सहाबियात (रज़ि॰) के हालात

भाग-2

तालिब हाशिमी

अनुवाद

नुज़हत यासमीन

विषय-सूची

1.	हज़रत लैला-बिन्ते-अबू-हसमा (रज़ि०)	9
2.	हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-सफ़वान (रज़ि०)	12
3.	हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-मुजल्लल आमिरीया (रज़ि०)	12
4.	हज़रत अमरा-बिन्ते-सअदी (रज़ि०)	13
5.	हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मज़ऊन (रज़ि०)	13
6.	हज़रत रैता-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)	14
7.	हज़रत हसना (रज़ि०)	15
8.	हज़रत उमैना-बिन्ते-ख़लफ़ुल-खुज़ाईया (रज़ि०)	16
9.	हज़रत सहला-बिन्ते-सुहैल-बिन-अम्र (रज़ि०)	17
10.	हज़रत उम्मे-कुलसूम-बिन्ते-सुहैल-बिन-अम्र (रज़ि०)	20
11.	हज़रत उम्मे-ज़ियाद अशजईया (रज़ि०)	21
12.	हज़रत उम्मे-क़ैस-बिन्ते-मिहसन (रज़ि०)	22

13. हज़रत लैला ग़िफ़ारिया (रज़ि०) 22

14. हज़रत ज़ुबाआ-बिन्ते-ज़ुबैर (रज़ि०) 23

15. हज़रत उम्मे-अय्यूब अंसारिया (रज़ि०) 23

16. हज़रत उम्मे-सलीत अंसारिया (रज़ि०) 26

17. हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) 26

18. हज़रत उम्मे-फ़रदा (रज़ि०) 30

19. एक ख़ुशनसीब सहाबिया (रज़ि०) 32

20. हज़रत तमाज़ुर-बिन्ते-असबग़ (रज़ि०) 33

21. हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अबू-सलमा (रज़ि०) 34

22. हज़रत दुर्रा-बिन्ते-अबू-सलमा (रज़ि०) 37

23. हज़रत हबीबा-बिन्ते-उबैदुल्लाह (रज़ि०) 38

24. हज़रत सलमा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़ादिमा 39

25. हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) 40

26. हज़रत आतिका-बिन्ते-ज़ैद (रज़ि०) 41

27. हज़रत सलमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०) 45

28. हज़रत उमामा-बिन्ते-हमज़ा (रज़ि०) 46

29. हज़रत उम्मे-फ़ज़्ल-बिन्ते-हमज़ा (रज़ि०) 47

30. हज़रत अमरा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) 47

31. हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-वलीद (रज़ि०) 48

32. हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-हंज़ला (रज़ि०) 49

33. हज़रत सहला-बिन्ते-आसिम क़ुज़ाईया (रज़ि०) 49

34. हज़रत सुबैता-बिन्ते-यआर अंसारिया (रज़ि०) 50

35. हज़रत उम्मे-औस अंसारिया (रज़ि०) 51

36. हज़रत उम्मे-ख़ल्लाद अंसारिया (रज़ि०) 52

37. हज़रत उम्मे-ख़ैर-बिन्ते-सख़्र (रज़ि०) 52

38. हज़रत सुवैबा (रज़ि०) 55

39. हज़रत सुबैआ ग़ामिदीया (रज़ि०) 56

40. हज़रत सीरीन क़िब्तीया (रज़ि०) 58

41. हज़रत तमीमा-बिन्ते-वह्ब (रज़ि०) 59

42. हज़रत बिन्ते-अम्र-बिन-वह्ब (रज़ि०) 60

43. हज़रत उम्मे-हरमला-बिन्ते-अब्दुल-असवद (रज़ि०) 61

44. हज़रत बरका-बिन्ते-यसार (रज़ि०) 61

45. हज़रत फ़ुकैहा-बिन्ते-यसार (रज़ि०) 62

46. हज़रत असमा-बिन्ते-सलामा (रज़ि०) 63

47. हज़रत यक़ज़ा-बिन्ते-अ़लक़मा (रज़ि०) 64

48. हज़रत उम्मे-हबीबा-बिन्ते-जह्श (रज़ि०) 64

49. हज़रत अरवा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब (रज़ि०) 65

50. हज़रत उम्मे-अब्द (रज़ि०) 68

51. हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मुआविया (रज़ि०) 69

52. हज़रत जुमाना-बिन्ते-अबू-तालिब (रज़ि०) 72

53. हज़रत उम्मे-हानी-बिन्ते-अबू-तालिब (रज़ि०) 73

54. हज़रत हौला (रज़ि०) 77

55. हज़रत उम्मे-हकीम-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) 78

56. हज़रत सफ़ीया-बिन्ते-रबीआ (रज़ि०) 85

57. हज़रत तय्यिबा-बिन्ते-वह्ब (रज़ि०) 86

58. हज़रत उम्मे-हकीम-बिन्ते-ज़ुबैर (रज़ि०) 86

59. हज़रत हलीमा सादीया (रज़ि०) 87

60. हज़रत शैमा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) 92

61. हज़रत हिन्द-बिन्ते-उत्बा (रज़ि०) 94

62. हज़रत दुर्रा-बिन्ते-अबू-लहब (रज़ि०) 99

63. हज़रत उमैमा उम्मे-अबू-हुरैरा (रज़ि०) 101

64. हज़रत उमैमा-बिन्ते-ग़न्म (रज़ि०) 103

65. हज़रत हिन्द-बिन्ते-जाबिर (रज़ि०) 104

66. हज़रत आतिका-बिन्ते-औफ़ (रज़ि०) 104

67. हज़रत सफ़वान-बिन-मुअत्तल (रज़ि०) की बीवी 105

68. हज़रत उम्मे-मिहजन (रज़ि०) 106

69. हज़रत ख़ौला-बिन्ते-हकीम (रज़ि०) 107

70. हज़रत हमना-बिन्ते-जह्श (रज़ि०) 110

71. हज़रत अरवा-बिन्ते-कुरैज़ (रज़ि०) 111

72. हज़रत सुअ्दा-बिन्ते-कुरैज़ (रज़ि०) 113

73. हज़रत हाला-बिन्ते-ख़ुवैलिद (रज़ि०) 114

74. हज़रत जस्सामा (हस्साना) मुज़नीया (रज़ि०) 115

75. हज़रत उम्मे-कुलसूम-बिन्ते-उक़्बा (रज़ि०) 116

76. हज़रत उम्मे-ख़ालिद-बिन्ते-ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०) 119

77. हज़रत उम्मे-वरक़ा-बिन्ते-नौफ़ल अंसारिया (रज़ि०) 122

78. हज़रत उम्मे-मनीअ़ अंसारिया (रज़ि०) 124

79. हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) — ख़ातूने-उहुद 124

80. हज़रत उम्मे-अतीया-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) 137

81. हज़रत असमा अंसारिया (रज़ि०) 144

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है)

हज़रत लैला-बिन्ते-अबू-हसमा (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-अब्दुल्लाह लैला-बिन्ते-अबू-हसमा (रज़ि०) का ताल्लुक़ क़ुरैश के बनू-अदी ख़ानदान से था।

नसब का सिलसिला यह है : लैला-बिन्ते-अबू-हसमा-बिन-हुज़ैफ़ा-बिन-ग़ानिम-बिन-आमिर-बिन-अब्दुल्लाह-बिन-उबैद-बिन-उवैज-बिन-अदी-बिन-काब-बिन-लुऐ।

इनका निकाह हज़रत आमिर-बिन-रबीआ अनज़ी से हुआ। वे बनू-अनज़-बिन-वाइल में से थे और बनू-अदी के साथी थे।

हज़रत उमर (रज़ि०) के बाप ख़त्ताब ने उन्हें मुहब्बत में अपना बेटा बना रखा था।

दोनों मियाँ-बीवी को अल्लाह ने नेक और भला स्वभाव दिया था। उन्होंने इस्लाम के बिलकुल शुरू के ज़माने में ही इस्लाम क़बूल कर लिया और मुशरिकों के ज़ुल्म व सितम का निशाना बन गए। जब मक्का के इस्लाम-दुश्मनों का ज़ुल्म बहुत बढ़ गया तो दोनों मियाँ-बीवी ने नबी (सल्ल०) की इजाज़त से सन् 5 नबवी में हबशा हिजरत करने का इरादा किया। हज़रत लैला (रज़ि०) ऊँट पर सवार होने को थीं कि हज़रत उमर (रज़ि०) वहाँ आ गए। वे अभी तक कुफ़्र और शिर्क की भूल-भुलइयों में भटक रहे थे। उन्होंने हज़रत लैला (रज़ि०) से पूछा, "उम्मे-अब्दुल्लाह! किधर की तैयारी है?"

उन्होंने जवाब दिया, "तुम लोगों ने हमें बहुत सताया है, इसलिए हम लोग घर-बार छोड़ रहे हैं। अल्लाह की ज़मीन छोटी नहीं है, जहाँ

चाहेंगे चले जाएँगे और जब तक अल्लाह मुसलमानों के लिए कोई आसानी की सूरत न निकाल दे, हम अपने वतन से दूर ही रहेंगे।"

हज़रत उमर (रज़ि०) को उनपर बड़ा तरस आया, उन्होंने कहा, "अल्लाह तुम्हारे साथ हो।"

जब वे चले गए तो हज़रत लैला (रज़ि०) के शौहर हज़रत आमिर-बिन-रबीआ (रज़ि०) भी आ पहुँचे। हज़रत लैला (रज़ि०) ने उन्हें यह बातचीत सुनाई तो बोले, "उमर उस वक़्त तक मुसलमान न होंगे जब तक ख़त्ताब का गधा ईमान न लाएगा।" यानी वे समझते थे कि जिस तरह गधा ईमान नहीं ला सकता उसी तरह हज़रत उमर (रज़ि०) का भी ईमान लाना नामुमकिन है। लेकिन हज़रत लैला (रज़ि०) ने कहा, "मुझे देखकर उमर को रोना आ रहा था, क्या पता अल्लाह उनका दिल फेर दे।"

हज़रत आमिर (रज़ि०) ने फ़रमाया, "क्या तुम यह चाहती हो कि उमर ईमान ले आएँ?"

हज़रत लैला (रज़ि०) ने कहा, "हाँ।"

इस वाक़िए को थोड़े बहुत मतभेद के साथ कई सीरत-निगारों ने बयान किया है। अल्लाह ने हज़रत लैला (रज़ि०) की तमन्ना यूँ पूरी की कि अगले ही साल हज़रत उमर (रज़ि०) ईमान ले आए और इस्लाम का मज़बूत सहारा बन गए।

हज़रत लैला (रज़ि०) और हज़रत आमिर (रज़ि०) को अभी हबशा गए हुए सिर्फ़ तीन महीने ही गुज़रे थे कि नबी (सल्ल०) और मुशरिकों के बीच समझौते की ख़बर मशहूर हो गई। हबशा के मुहाजिरों ने यह ख़बर सुनी तो उनका एक गरोह सन् 5 नबवी में मक्का वापस आ गया। उसमें हज़रत लैला (रज़ि०) और हज़रत आमिर (रज़ि०) भी शामिल थे। मक्का के क़रीब पहुँचकर वापस आनेवालों को मालूम हुआ

कि यह ख़बर ग़लत थी, लेकिन अब उन्होंने वापस पलटना मुनासिब न समझा और क़ुरैश के किसी-न-किसी सरदार की पनाह हासिल करके मक्का में दाख़िल हो गए। हज़रत आमिर-बिन-रबीआ (रज़ि०) और हज़रत लैला (रज़ि०) ने आस-बिन-वाइल सहमी की पनाह ली। इस घटना के बाद मुसलमानों पर मुशरिकों का ज़ुल्म व सितम और बढ़ गया।

अब नबी (सल्ल०) ने फिर हिदायत दी कि लोग इस ज़ुल्म से छुटकारा पाने के लिए हबशा हिजरत कर जाएँ। सन् 6 नबवी के शुरू में क़रीब सौ लोगों का एक क़ाफ़िला हबशा हिजरत कर गया। इस दूसरी हिजरत में भी सीरत-निगारों ने हज़रत आमिर (रज़ि०) और हज़रत लैला (रज़ि०) का नाम वाज़ेह तौर पर लिखा है। हबशा में कुछ साल परदेसियों की ज़िन्दगी गुज़ारकर हज़रत आमिर (रज़ि०) और हज़रत लैला (रज़ि०) कुछ दूसरे मुसलमानों के साथ नबी (सल्ल०) की मदीना हिजरत से कुछ पहले मक्का आए और फिर कुछ दिनों बाद नबी (सल्ल०) की इजाज़त से हमेशा के लिए मदीना चले गए।

अल्लामा इब्ने-साद का बयान है कि हज़रत लैला (रज़ि०) मदीना हिजरत करनेवाली औरतों में पहला मक़ाम रखती हैं।

इतिहासकार इब्ने-असीर ने हज़रत लैला (रज़ि०) की ख़ास बातों में यह भी बयान किया है कि इस्लाम के शुरू में ईमान लाने की वजह से उन्हें पहले क़िब्ला यानी बैतुल-मक़दिस की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ने की ख़ुशनसीबी भी हासिल हुई। (वैसे यह ख़ुशनसीबी पहले-पहल इस्लाम क़बूल करनेवाले सभी मुसलमानों को हासिल है।)

एक रिवायत में है कि एक बार हज़रत लैला-बिन्ते-अबू-हसमा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के सामने अपने छोटे बच्चे से कहा, "यहाँ आओ, मैं तुम्हें कुछ दूँगी।"

नबी (सल्ल०) ने पूछा, "तुम उसको क्या देना चाहती थीं?"

उन्होंने कहा, "खजूर।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर तुम उसे कुछ न देतीं तो मैं तुमको झूठा समझता।"

ज़िन्दगी के दूसरे हालात और इन्तिक़ाल के साल का पता नहीं।

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-सफ़वान (रज़ि०)

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-सफ़वान (रज़ि०) का ताल्लुक़ बनू-किनाना से था। उनका निकाह हज़रत अम्र-बिन-सईद-बिन-आस उमवी (रज़ि०) से हुआ था।

दोनों मियाँ-बीवी इस्लाम के शुरू के दिनों में ईमान ले आए और "साबिक़ूनल-अव्वलून" यानी बिलकुल शुरू में ईमान लानेवालों के पाकीज़ा गरोह में शामिल हुए। हालाँकि अम्र-बिन-सईद (रज़ि०) बनू-उमैया के बड़े इज़्ज़तदार लोगों में से थे, लेकिन इस्लाम क़बूल करने के जुर्म में मुशरिकों ने उन्हें भी मक्का में चैन से नहीं रहने दिया। इसलिए वे अपनी बीवी के साथ सन् 6 नबवी में हबशा की तरफ़ हिजरत कर गए। हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-सफ़वान (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हबशा में ही हो गया और वे परदेस में ही दफ़न की गईं।

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-मुजल्लल आमिरीया (रज़ि०)

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-मुजल्लल आमिरीया (रज़ि०) उन बुलन्द मर्तबा सहाबियात में से हैं जिन्होंने नुबूवत के शुरू के तीन सालों में इस्लाम क़बूल कर लिया था। उनका निकाह हज़रत हातिब-बिन-हारिस जमही (रज़ि०) से हुआ। वे भी उन्हीं की तरह नुबूवत के शुरू में ही इस्लाम क़बूल कर चुके थे। जब मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने उन्हें बहुत सताया

तो दोनों मियाँ-बीवी अपने दो बेटों मुहम्मद-बिन-हातिब (रज़ि०) और हारिस-बिन-हातिब (रज़ि०) को लेकर हबशा की दूसरी हिजरत में दूसरे सताए हुए मुसलमानों के साथ हबशा चले गए। हबशा में ही हातिब-बिन-हारिस (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हो गया और वहीं उनकी आख़िरी आरामगाह बनी। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) अपने बेटों के साथ सन् 7 हिजरी में मदीना वापस आईं।

सीरत की किताबों में उनकी ज़िन्दगी के हालात इससे ज़्यादा नहीं मिलते।

हज़रत अमरा-बिन्ते-सअदी (रज़ि०)

हज़रत अमरा-बिन्ते-सअदी (रज़ि०) का नाम कुछ रिवायतों में उमैरा और कुछ में अमरा आया है। इनका निकाह उम्मुल-मोमिनीन हज़रत सौदा-बिन्ते-ज़मआ (रज़ि०) के सगे भाई हज़रत मालिक-बिन-ज़मआ (रज़ि०) से हुआ था। दोनों मियाँ-बीवी साबिक़ूनल-अव्वलून यानी नुबूवत के बिलकुल शुरू में इस्लाम क़बूल करनेवालों के पाकीज़ा गरोह में से हैं और दोनों को सन् 6 नबवी में हबशा की हिजरत की ख़ुशनसीबी भी हासिल है।

इब्ने-हिशाम के बयान के मुताबिक़ हज़रत अमरा (रज़ि०) अपने शौहर मालिक-बिन-ज़मआ (रज़ि०) के साथ ख़ैबर की लड़ाई के वक़्त हबशा से मदीना वापस आईं।

इनके इससे ज़्यादा हालात सीरत की किताबों में नहीं मिलते।

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मज़ऊन (रज़ि०)

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मज़ऊन (रज़ि०) का ताल्लुक़ बनू-जमह से था।

इब्ने-असीर ने उनका नसब-नामा यूँ लिखा है: ज़ैनब-बिन्ते-मज़ऊन-बिन-हबीब-बिन-वह्ब-बिन-हुज़ाफ़ा-बिन-जमह-बिन-अम्र-बिन-हसीस-बिन-काब-बिन-लुऐ-बिन-ग़ालिब।

काब-बिन-लुऐ पर इनके नसब का सिलसिला नबी (सल्ल०) के नसब से मिल जाता है।

उनका निकाह हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि०) से हुआ और शायद सन् 6 नबवी में उन ही के साथ निहायत नासाज़गार हालात में इस्लाम क़बूल किया।

सन् 13 नबवी में उन्होंने अपने बुलन्द मर्तबा शौहर के साथ ही मदीना की तरफ़ हिजरत की। इसका सुबूत हज़रत उमर (रज़ि०) की उस रिवायत से मिलता है, जिसमें वे अपने बेटे हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) के बारे में फ़रमाते हैं कि "इनको तो उनके माँ-बाप ने अपने साथ लेकर हिजरत की थी।"

इस्लाम के फ़क़ीह (धर्मशास्त्र के विद्वान) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) और उम्मुल-मोमिनीन हज़रत हफ़सा-बिन्ते-उमर (रज़ि०) हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मज़ऊन (रज़ि०) की कोख से ही पैदा हुए थे।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के तीनों भाइयों हज़रत उसमान-बिन-मज़ऊन (रज़ि०), हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) और हज़रत क़ुदामा-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) की गिनती बड़े ऊँचे मर्तबेवाले सहाबियों में होती है। वे तीनों इस्लाम के शुरू में ही ईमान लानेवालों और बद्र की लड़ाई में मुसलमानों के साथ शरीक होनेवालों में से थे।

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मज़ऊन के इन्तिक़ाल के साल का पता नहीं चलता। एक रिवायत में है कि उनका इन्तिक़ाल मक्का में हुआ था।

हज़रत रैता-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

हज़रत रैता-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) का ताल्लुक़ बनू-तैम से था।

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के ममेरे भाई हारिस-बिन-ख़ालिद तैमी (रज़ि०) से इनकी शादी हुई। दोनों मियाँ-बीवी इस्लाम के बिलकुल शुरू

के ज़माने में ईमान लाए और पहले-पहल इस्लाम क़बूल करनेवाले ख़ुशनसीबों के पाकीज़ा गरोह में शामिल हुए।

जब इस्लाम लाने के जुर्म में क़ुरैश के मुशरिकों ने मुसलमानों का जीना दूभर कर दिया तो नबी (सल्ल०) की इजाज़त पाकर लोगों ने हबशा की तरफ़ हिजरत करना शुरू कर दिया। हज़रत रैता (रज़ि०) और उनके शौहर हारिस-बिन-ख़ालिद (रज़ि०) भी दूसरी हिजरत में हबशा चले गए। हबशा में रैता (रज़ि०) के चार बच्चे हुए। एक लड़का मूसा और तीन लड़कियाँ आइशा, ज़ैनब और फ़ातिमा। नबी (सल्ल०) के मदीना हिजरत करने के कुछ मुद्दत बाद हज़रत हारिस-बिन-ख़ालिद (रजि०) अपने बीवी-बच्चों के साथ मदीना के लिए चले। रास्ते में एक जगह सारे ख़ानदान ने पानी पिया। वह पानी ज़हरीला था। हज़रत रैता (रज़ि०) और चारों बच्चे उस ज़हरीले पानी के असर से इन्तिक़ाल कर गए। हज़रत हारिस (रज़ि०) बच गए और अल्लाह की राह में अपने घरवालों को दफ़न करके अकेले मदीना पहुँचे। नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर अपनी दुखभरी कहानी सुनाई तो नबी (सल्ल०) ने उनको सब्र की नसीहत फ़रमाई। फिर एक दूसरी जगह उनका निकाह कर दिया।

हज़रत हसना (रज़ि०)

हज़रत हसना (रज़ि०) के हसब-नसब और ख़ानदान के बारे में सीरत की किताबों में कुछ नहीं मिलता। सिर्फ़ इतना पता चलता है कि वे बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत शुरहबील-बिन-हसना (रज़ि०) की माँ थीं और ख़ुद भी इनकी गिनती बुलन्द दर्जा सहाबियात में होती है।

जाहिलियत के ज़माने में इनका निकाह अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-मुताअ किन्दी से हुआ। उनसे शुरहबील (रज़ि०) पैदा हुए। वे अभी छोटे बच्चे ही थे कि अब्दुल्लाह का इन्तिक़ाल हो गया। अनुमान है कि हसना उसी ज़माने में अपने नन्हें बच्चे को साथ लेकर अपने देश से

मक्का आईं और बनू-जमह के एक शख़्स सुफ़ियान-बिन-मअमर (रज़ि०) से निकाह कर लिया। यह घटना नुबूवत से पच्चीस-तीस साल पहले की है।

चूँकि मक्का के लोगों को हज़रत शुरहबील (रज़ि०) के पूर्वजों की कोई जानकारी नहीं थी इसलिए उन्हें माँ की निस्बत से शुरहबील-बिन-हसना पुकारने लगे। हज़रत सुफ़ियान-बिन-मअमर (रज़ि०) से हज़रत हसना (रज़ि०) के दो बेटे जाबिर (रज़ि०) और जुनादा (रज़ि०) पैदा हुए। इस घर के सभी लोग बहुत नेक और भले थे। जब नबी (सल्ल०) ने इस्लाम की दावत शुरू की तो हज़रत सुफ़ियान (रज़ि०), हज़रत हसना (रज़ि०), हज़रत जाबिर (रज़ि०) और हज़रत जुनादा (रज़ि०) सबने बिना किसी झिझक के इस दावत को क़बूल कर लिया, यानी पूरे ख़ानदान ने एक साथ ईमान की दौलत हासिल कर ली। ऐसी ख़ुशनसीबी बहुत कम ख़ानदानों को हासिल हुई है।

कुछ साल बाद नबी (सल्ल०) ने सहाबियों (रज़ि०) को इस्लाम-दुश्मनों के ज़ुल्म व सितम से बचने के लिए हबशा जाने की सलाह दी, तो सन् 6 नबवी में हज़रत हसना (रज़ि०) भी अपने शौहर और बेटों के साथ हबशा चली गईं। इस तरह पूरे ख़ानदान ने अल्लाह की राह में अपना घर छोड़ दिया। हज़रत हसना (रज़ि०) क़रीब तेरह साल तक हबशा में रहीं और ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर अपने घरवालों के साथ मदीना वापस आईं।

हज़रत हसना (रज़ि०) की ज़िन्दगी के इससे ज़्यादा हालात और उनके इन्तिक़ाल के साल की चर्चा सीरत की किताबों में मौजूद नहीं है।

हज़रत उमैना-बिन्ते-ख़लफ़ुल-ख़ुज़ाईया (रज़ि०)

हज़रत उमैना (रज़ि०) का नाम कुछ सीरत-निगारों ने उमैमा और कुछ ने हुमैना लिखा है। इनका ताल्लुक़ बनू-ख़ुज़ाआ से था। इनकी

शादी बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद-बिन-आस उमवी (रज़ि०) से हुई थी। दोनों मियाँ-बीवी बिलकुल शुरू में ईमान लानेवालों की पाकीज़ा जमाअत में शामिल हैं।

हज़रत उमैना (रज़ि०) ने सन् 6 नबवी में अपने शौहर के साथ हबशा की तरफ़ हिजरत की। वहीं उनके बेटे सईद (रज़ि०) और बेटी उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) पैदा हुईं। इन दोनों को भी सहाबियत की ख़ुशनसीबी हासिल है।

हज़रत उमैना (रज़ि०) ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर अपने शौहर और बच्चों के साथ मदीना आईं और बाक़ी ज़िन्दगी यहीं गुज़ारी। इन्तिक़ाल का साल मालूम नहीं है।

हज़रत सहला-बिन्ते-सुहैल-बिन-अम्र (रज़ि०)

हज़रत सहला (रज़ि०) की गिनती बुलन्द मर्तबा सहाबियात में होती है। वे क़ुरैश के ख़ानदान बनू-आमिर-बिन-लुऐ से थीं।

नसब-नामा यह है : सहला-बिन्ते-सुहैल-बिन-अम्र-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-वुद-बिन-नस्र-बिन-मालिक-बिन-हस्ल-बिन-आमिर-बिन-लुऐ।

हज़रत सहला (रज़ि०) के बाप सुहैल-बिन-अम्र (रज़ि०) क़ुरैश के रईसों में से थे। वे बड़ी अच्छी तक़रीरें करते थे और इसी लिए उनका लक़ब ख़तीबे-क़ुरैश (क़ुरैश का वक्ता) था। वे अपने ज़ोरदार भाषणों से बड़ी-बड़ी सभाओं में हलचल मचा देते थे। बदक़िस्मती से उनके सारे जोशीले भाषण इस्लाम की मक्का पर जीत तक इस्लाम के ख़िलाफ़ इस्तेमाल होते रहे।

अल्लाह की क़ुदरत कि सुहैल इस्लाम-दुश्मनी में जितने कट्टर थे उनकी औलाद इस्लाम से उतनी ही मुहब्बत करनेवाली थी। उनकी दो बेटियाँ सहला (रज़ि०) और उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) और दो बेटे

अब्दुल्लाह (रज़ि०) और अबू-जन्दल आस (रज़ि०) उन नेक और ख़ुशनसीब लोगों में से थे जिन्होंने इस्लाम के शुरू के दिनों में एक अल्लाह की बन्दगी की दावत क़बूल कर ली। हज़रत सहला (रज़ि०) की शादी क़ुरैश के रईस उत्बा-बिन-रबीआ के बेटे अबू-हुज़ैफ़ा हिशाम (रज़ि०) से हुई। वे भी पहले-पहल इस्लाम क़बूल करनेवालों की पाकीज़ा जमाअत में एक ख़ास हैसियत रखते थे। दोनों मियाँ-बीवी क़ुरैश के ताक़तवर खानदानों से ताल्लुक़ रखने के बावजूद मक्का के मुशरिकों के ज़ुल्म व सितम से न बच सके और सन् 5 नबवी में नबी (सल्ल०) की इजाज़त से हिजरत करके हबशा चले गए। वहाँ अभी दो-तीन महीने ही गुज़रे थे कि उन्होंने नबी (सल्ल०) और मुशरिकों के बीच सुलह हो जाने की ख़बर सुनी। यह ख़बर सुनकर वे कुछ दूसरे हबशा के मुहाजिरों के साथ मक्का के लिए चल पड़े। अभी मक्का के रास्ते में ही थे कि इस ख़बर के ग़लत होने का पता चला, लेकिन अब उन्होंने पलटकर वापस जाना मुनासिब न समझा और उमैया-बिन-ख़लफ़ की हिमायत हासिल करके मक्का में दाख़िल हो गए।

अल्लामा तबरी (रह०) का बयान है कि इसके बाद हज़रत सहला (रज़ि०) और अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) मदीना की हिजरत तक मक्का में ही रहे। लेकिन इब्ने-इसहाक़ और कुछ दूसरे सीरत-निगारों ने लिखा है कि वे सन् 6 नबवी में दोबारा हिजरत करके फिर हबशा चले गए थे। वहीं उनके बेटे मुहम्मद-बिन-अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) की पैदाइश हुई। नबी (सल्ल०) के मदीना हिजरत करने से कुछ दिनों पहले तैंतीस मर्दों और आठ औरतों की एक जमाअत हबशा से मक्का वापस आ गई। उसमें हज़रत सहला (रज़ि०), हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) और उनके बेटे मुहम्मद (रज़ि०) भी शामिल थे। कुछ मुद्दत के बाद जब नबी (सल्ल०) ने सहाबियों (रज़ि०) को मदीना हिजरत करने की इजाज़त दी तो हज़रत सहला (रज़ि०), उनके शौहर और बेटे अपने आज़ाद किए हुए ग़ुलाम हज़रत सालिम (रज़ि०) के साथ मक्का से हिजरत करके हमेशा के लिए मदीना चले गए और फिर सारी ज़िन्दगी वहीं गुज़ारी।

हज़रत सालिम (रज़ि०) जो सालिम-मौला-अबू-हुज़ैफ़ा के नाम से मशहूर हैं, असल में हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) की दूसरी बीवी हज़रत सुबैता-बिन्ते-यआर अंसारिया (रज़ि०) के ग़ुलाम थे। उन्होंने आज़ाद कर दिया तो हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) ने उन्हें अपना मुँह-बोला बेटा बना लिया और वे लोगों में सालिम-बिन-अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) के नाम से मशहूर हो गए। लेकिन जब यह हुक्म नाज़िल हुआ—

"लोगों को उनके असल बापों की निस्बत से पुकारो"

(क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-5)

तो लोग हज़रत सालिम (रज़ि०) को सालिम-मौला-अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) कहने लगे।

मुसनद अबू-दाऊद में है कि इस हुक्म के नाज़िल होने के बाद हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा को हज़रत सालिम (रज़ि०) का अपने घर में आना-जाना नागवार गुज़रने लगा। चुनाँचे हज़रत सहला (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और कहा—

"ऐ अल्लाह के रसूल! सालिम को हम अपना बेटा समझते थे और वह बचपन से हमारे घर में आता-जाता था लेकिन अब अबू-हुज़ैफ़ा को उसका हमारे घर में आना-जाना नागवार गुज़रता है।"

नबी (सल्ल०) ने कहा कि उसको अपना दूध पिला दो, तो वह तुम्हारा महरम हो जाएगा।[1] इस तरह हज़रत सालिम (रज़ि०) हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) और हज़रत सहला (रज़ि०) के दूध शरीक बेटे हो गए।

---

1. यहाँ किसी को यह ग़लतफ़हमी न होनी चाहिए कि जिस तरह छोटे बच्चों को माँ दूध पिलाती है उसी तरह पिलाने के लिए नबी (सल्ल.) ने कहा, बल्कि चमचे वग़ैरा में दूध लेकर पिलाया जा सकता है।

उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-सलमा फ़रमाती हैं कि यह सिर्फ़ हज़रत सालिम (रज़ि०) के लिए ख़ास इजाज़त थी वरना जवानी में रज़ाअत (दूध पिलाने से रिश्ता क़ायम होना) साबित नहीं।

हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में यमामा की मशहूर लड़ाई में शहीद हुए। उनकी शहादत के बाद हज़रत सहला (रज़ि०) ने हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) से निकाह कर लिया।

इनके इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात सीरत की किताबों में नहीं मिलते।

हज़रत उम्मे-कुलसूम-बिन्ते-सुहैल-बिन-अम्र (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-कुलसूम-बिन्ते-सुहैल (रज़ि०), हज़रत सहला-बिन्ते-सुहैल (रज़ि०) की सगी बहन थीं। ये भी बड़े ऊँचे मर्तबे की सहाबिया थीं।

नूबूवत के बाद शुरू के ज़माने में ही ईमान ले आईं। इनकी शादी अबू-सबरा-बिन-अबू-रुह्म से हुई, दोनो एक ही दादा की औलाद में से थे और नबी (सल्ल०) की फूफी बर्रा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब के बेटे थे। अबू-सबरा-बिन-अबू-रुह्म को भी साबिक़ूनल-अव्वलून की पाकीज़ा जमाअत में शामिल होने की ख़ुशनसीबी हासिल है।

तमाम सीरत-निगारों का वज़ाहत के साथ बयान है कि सन् 5 नबवी में पहली बार हबशा की तरफ़ हिजरत करनेवालों में हज़रत अबू-सबरा (रज़ि०) भी शामिल थे। लेकिन हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) के बारे में मतभेद है कि वे पहली हिजरत में अपने शौहर के साथ हबशा गईं या दूसरी हिजरत में। ज़रक़ानी (रह०) ने कुछ सीरत-निगारों के हवाले से बयान किया है कि वे हबशा की तरफ़ हिजरत करनेवाले

पहले क़ाफ़िले में शामिल थीं। हज़रत अबू-सबरा (रज़ि०) तीन महीने के बाद हबशा से मक्का वापस आ गए और अख़नस-बिन-शरीक़ की पनाह हासिल कर ली। कुछ मुद्दत के बाद मुहाजिरों के दूसरे क़ाफ़िले ने हबशा की हिजरत का इरादा किया तो हज़रत अबू-सबरा (रज़ि०) और उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) भी उस क़ाफ़िले के साथ दोबारा हबशा चले गए। क़रीब छः-सात सालों तक परदेस की मुसीबतें झेलने के बाद दोनों मियाँ-बीवी नबी (सल्ल०) के मदीना की तरफ़ हिजरत करने से पहले मक्का वापस आ गए और फिर नबी (सल्ल०) की इजाज़त से मदीना की तरफ़ हिजरत की। नबी (सल्ल०) के ज़माने में अबू-सबरा (रज़ि०) मदीना में ही ज़िन्दगी गुज़ारते रहे। जब नबी (सल्ल०) का इन्तिक़ाल हो गया तो वे मदीना छोड़कर फिर मक्का आ गए और फिर बाक़ी ज़िन्दगी यहीं गुज़ारी। ज़ाहिर है कि हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) भी उनके साथ होंगी।

हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) की ज़िन्दगी के दूसरे हालात और इन्तिक़ाल के साल के बारे में मालूम नहीं है।

हज़रत उम्मे-ज़ियाद अशजईया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-ज़ियाद (रज़ि०) का ताल्लुक़ बनू-अशजअ़ से था।

सहीह मुस्लिम और मुसनद अबू-दाऊद में है कि उन्होंने पाँच दूसरी औरतों के साथ ख़ैबर की लड़ाई में चरख़ा कातकर मुसलमानों की मदद की थी। वे मैदान से तीर उठाकर लाती थीं और मुजाहिदों को सत्तू पिलाती थीं।

अल्लामा इब्ने-साद का बयान है कि वे दवाओं और चीर-फाड़ के ज़रिए इलाज करने में भी माहिर थीं और ज़ख़्मियों की मरहम-पट्टी किया करती थीं।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-क़ैस-बिन्ते-मिहसन (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-क़ैस (रज़ि०) का ताल्लुक़ बनू-असद-बिन-ख़ुज़ैमा से था।

नसब का सिलसिला यह है : उम्मे-क़ैस-बिन्ते-मिहसन-बिन-हरसान-बिन-क़ैस-बिन-मुर्रा-बिन-कबीर-बिन-ग़न्म-बिन-दूदान-बिन-असद-बिन-ख़ुज़ैमा।

हज़रत उम्मे-क़ैस (रज़ि०) और उनके भाई हज़रत उक्काशा बिन-मिहसन (रज़ि०) और हज़रत अम्र-बिन-मिहसन (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले मुसलमान हुए। जब नबी (सल्ल०) ने सहाबा (रज़ि०) को मदीना की तरफ़ हिजरत की इजाज़त दी तो हज़रत उम्मे-क़ैस (रज़ि०) भी अपने भाइयों और दूसरे मुसलमानों के साथ मदीना पहुँचीं।

हज़रत उम्मे-क़ैस (रज़ि०) से चौबीस हदीसें रिवायत की गई हैं।

इनके इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं।

हज़रत लैला ग़िफ़ारिया (रज़ि०)

हज़रत लैला ग़िफ़ारिया (रज़ि०) का ताल्लुक़ बनू-ग़िफ़ार से था।

दवाओं और चीर-फाड़ के ज़रिए बहुत अच्छा इलाज जानती थीं। तबरानी ने ख़ुद उनसे रिवायत की है कि "मैं नबी (सल्ल०) के साथ लड़ाइयों में शरीक होती थी और ज़ख़्मियों का इलाज करती थी।"

मशहूर सहाबी हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी की बीवी का नाम भी लैला था। सीरत-निगारों ने यह वज़ाहत नहीं की कि ये लैला उनकी बीवी थीं या कोई और। इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं।

हज़रत ज़ुबाआ-बिन्ते-ज़ुबैर (रज़ि०)

हज़रत ज़ुबाआ (रज़ि०) का ताल्लुक़ बनू-हाशिम से था। ये नबी (सल्ल०) के चचा ज़ुबैर-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी थीं। इनका निकाह मशहूर सहाबी हज़रत मिक़दाद-बिन-अम्र असवद (रज़ि०) से हुआ। इस सिलसिले में हाफ़िज़ इब्ने-हजर ने एक दिलचस्प रिवायत बयान की है।

वे कहते हैं कि हज़रत मिक़दाद (रज़ि०) से एक बार हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) ने कहा, "तुम शादी क्यों नहीं करते?" मिक़दाद (रज़ि०) के स्वभाव में सादगी और सच्चाई थी, इसलिए उन्होंने बड़ी सादगी से कहा, "तुम अपनी लड़की से ब्याह दो।" इसपर हज़रत अब्दुर्रहमान बहुत नाराज़ हुए और उन्हें बुरा-भला कहा।

हज़रत मिक़दाद (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से शिकायत की तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर किसी को तुम्हें अपनी बेटी देने से इनकार है तो होने दो। मैं तुम्हारी शादी अपने चचा की बेटी से कराऊँगा।" फिर नबी (सल्ल०) ने हज़रत ज़ुबाआ (रज़ि०) की शादी हज़रत मिक़दाद (रज़ि०) से कर दी। उनसे एक लड़की करीमा (रज़ि०) पैदा हुईं। उन्हें भी सहाबिया होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं।

हज़रत उम्मे-अय्यूब अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-अय्यूब (रज़ि०) का असली नाम मालूम नहीं है। वे अपनी कुन्नियत उम्मे-अय्यूब से ही मशहूर हैं। वे नबी (सल्ल०) के मेज़बान हज़रत अबू-अय्यूब अंसारी (रज़ि०) की बीवी थीं। नबी (सल्ल०) द्वारा मदीना हिजरत से पहले ही अपने शौहर के साथ इस्लाम क़बूल किया। नबी (सल्ल०) जब मदीना तशरीफ़ लाए तो सात महीने तक हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) के घर ही ठहरे। उन दिनों हज़रत उम्मे-अय्यूब (रज़ि०) ही नबी (सल्ल०) का खाना तैयार करती थीं।

शुरू-शुरू में नबी (सल्ल०) ने हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) के मकान के निचले हिस्से में क़ियाम फ़रमाया। हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-अय्यूब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की मरज़ी के मुताबिक़ ऊपरी मंज़िल पर चले गए थे। मगर उन्हें हर वक़्त यह ख़याल सताता था कि वे तो ऊपरी मंज़िल पर रहते हैं और नबी (सल्ल०) निचली मंज़िल पर ठहरे हैं।

इब्ने-हिशाम का बयान है कि एक दिन ऊपरी मंज़िल में पानी से भरा एक बरतन फूट गया। मियाँ-बीवी इस ख़याल से तड़प उठे कि पानी बहकर नीचे जाएगा और नबी (सल्ल०) को तकलीफ़ होगी। घर में ओढ़ने के लिए एक ही रज़ाई थी, उन्होंने फ़ौरन उसे घसीटकर पानी पर डाल दिया ताकि वह रज़ाई पानी सोख ले। जब पानी के बहने का इम्कान न रहा तब जाकर दोनों ने चैन की साँस ली।

एक दिन ऊपरी मंज़िल में रहने के ख़याल से वे इतना परेशान हुए कि दोनों मियाँ-बीवी छत के एक कोने में सिकुड़कर बैठ गए और सारी रात इसी हालत में जागकर गुज़ार दी। सुबह हुई तो नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हम सारी रात छत के एक कोने में बैठकर जागते रहे।"

नबी (सल्ल०) ने वजह पूछी तो बोले, "हमारे माँ-बाप आप पर क़ुरबान! हमें हर पल यह ख़याल तड़पाता है कि आप तो निचली मंज़िल में तशरीफ़ रखते हैं और हम ऊपरी मंज़िल पर रहते हैं। ऐ अल्लाह के रसूल! आप ऊपरी मंज़िल पर तशरीफ़ ले चलें, आपके ग़ुलामों के लिए आपके क़दमों के नीचे रहना ही ख़ुशनसीबी है।"

नबी (सल्ल०) ने उनकी यह दरख़ास्त क़बूल कर ली और हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-अय्यूब (रज़ि०) ख़ुशी-ख़ुशी निचली मंज़िल पर आ गए।

नबी (सल्ल०) मदीना में अपने घर तशरीफ़ ले जाने के बाद भी कभी-कभी हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले जाते थे।

दोनों मियाँ-बीवी बड़ी ख़ुशी से नबी (सल्ल०) का इस्तिक़बाल करते थे और जो कुछ घर में होता, आप (सल्ल०) की ख़िदमत में पेश कर देते थे।

एक दिन नबी (सल्ल०) भूख की हालत में अपने घर से निकले। रास्ते में हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) मिल गए। नबी (सल्ल०) दोनों को साथ लेकर हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) के घर गए। उस वक़्त हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) अपने घर के क़रीब अपने खजूरों के बाग़ में थे और घर में खाने की कोई चीज़ मौजूद नहीं थी। हज़रत उम्मे-अय्यूब (रज़ि०) ने नबी का स्वागत किया। नबी (सल्ल०) ने पूछा, "अबू-अय्यूब कहाँ हैं?"

हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की आवाज़ सुनी तो खजूरों का एक गुच्छा तोड़कर दौड़ते हुए घर आए और वह गुच्छा मेहमानों को पेश किया। फिर फ़ौरन एक बकरी ज़िब्ह की। हज़रत उम्मे अय्यूब (रज़ि०) ने आधे गोश्त का सालन पकाया और आधे के कबाब तैयार किए और नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में खाना पेश किया। नबी (सल्ल०) ने एक रोटी पर कुछ गोश्त रखकर फ़रमाया, "इसे फ़ातिमा के यहाँ भेज दो, उसने कई दिनों से कुछ नहीं खाया है।"

हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि०) ने हुक्म का पालन किया और नबी (सल्ल०) ने अपने साथियों के साथ खाना खाया। अनुमान है कि हज़रत उम्मे-अय्यूब (रज़ि०) ने इस तरह नबी (सल्ल०) की कई और मौक़ों पर भी ख़िदमत की होगी।

हज़रत उम्मे-अय्यूब (रज़ि०) से कुछ हदीसें भी रिवायत की गई हैं। उनकी कोख से अबू-अय्यूब (रज़ि०) की जो औलाद हुई उनमें तीन बेटे अय्यूब, ख़ालिद, मुहम्मद और एक बेटी अमरा के नाम मालूम हैं। हज़रत उम्मे-अय्यूब (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल सीरत की किताबों में मौजूद नहीं है।

हज़रत उम्मे-सलीत अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-सलीत (रज़ि०) का नाम-नसब मालूम नहीं है।

सहीह बुख़ारी में है कि उम्मे-सलीत उहुद की लड़ाई में उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) और कुछ दूसरी सहाबियात के साथ मशक (चमड़े की छागल) में पानी भर-भरकर लाती थीं और जख़्मियों को पिलाती थीं।

हज़रत उमर (रज़ि०) को उनकी यह ख़िदमत हमेशा याद रही। अपनी ख़िलाफ़त के ज़माने में उन्होंने मदीना की औरतों में चादरें बँटवाई। एक अच्छी क़िस्म की चादर बच गई तो किसी ने कहा, "आप यह चादर अपनी बीवी उम्मे-कुलसूम को दे दें।" उन्होंने फ़रमाया, "उम्मे-सलीत इस चादर की ज़्यादा हक़दार हैं। ये अंसार की उन औरतों में से हैं जिन्होंने नबी (सल्ल०) से बैअत की थी, वे उहुद की लड़ाई में मशक भर-भरकर पानी लाती थीं।"

एक रिवायत के मुताबिक़ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की बेटी हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ तो उनके ग़ुस्ल के मौक़े पर दूसरी औरतों के साथ वे भी हाज़िर थीं।

एक रिवायत में उनके बाप का नाम उबैद-बिन-ज़ियाद आया है।

उनकी ज़िन्दगी के और हालात किसी किताब में नहीं मिलते।

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०)

नाम : फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस था।

नसब-नामा : फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस-बिन-ख़ालिदे अकबर-बिन-वहूब-बिन-सअलबा-बिन-वाइला-बिन-अम्र-बिन-शैबान-बिन-मुहारिब-बिन-फ़िह्र।

माँ का नाम उमैमा-बिन्ते-रबीआ था जो बनू-किनाना से थीं। फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस का निकाह अबू-अम्र हफ़्स-बिन-मुग़ीरा से हुआ। वे

इस्लाम के शुरू के ज़माने में ही ईमान ले आईं और हिजरत के पहले ही दौर में दूसरी औरतों के साथ मदीना की तरफ़ हिजरत की।

सन् 10 हिजरी में नबी (सल्ल०) के हुक्म के मुताबिक़ हज़रत अली (रज़ि०) एक फ़ौज लेकर यमन की तरफ़ गए। इस फ़ौज में हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) के शौहर अबू-अम्र हफ़्स (रज़ि०) भी शामिल थे। चलने से पहले उन्होंने हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को तलाक़ दे दी।[1] वे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम इद्दत का ज़माना उम्मे-शरीक के यहाँ गुज़ारो।"

लेकिन हज़रत उम्मे-शरीक (रज़ि०) के घर उनके रिश्तेदार और दूसरे मेहमान बहुत आया करते थे। इसलिए आप (सल्ल०) ने अपने पहले हुक्म को बदल दिया और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) से फ़रमाया कि तुम इद्दत के दिन अपने चचेरे भाई इब्ने-उम्मे-मकतूम के यहाँ गुज़ारो। उन्होंने आप (सल्ल०) के हुक्म का पालन किया। जब इद्दत का ज़माना पूरा हो गया तो हज़रत मुआविया-बिन-अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) ने हज़रत

---

[1] यह घटना तारीख़ में बड़ी मशहूर हुई। बयान किया जाता है कि अबू-अम्र हफ़्स (रज़ि०) चलने से कुछ मुद्दत पहले हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को दो तलाक दे चुके थे। आख़िरी तलाक़ हज़रत अय्याश-बिन-रबीआ (रज़ि०) के ज़रिए से यमन के लिए जाते वक़्त दी और नफ़्क़े में 5 साअ जौ और 5 साअ खजूर भेजे। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने हज़रत अय्याश (रज़ि०) से खाने और कपड़े की माँग की तो उन्होंने कहा, "अबू-अम्र हफ़्स ने सिर्फ़ खजूर और जौ दिए हैं, इसके अलावा हमारे पास कुछ नहीं है। जो कुछ दिया गया है वह भी सिर्फ़ एहसान और हमदर्दी है।" हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को इसपर ग़ुस्सा आ गया, वे अपने कपड़े वग़ैरा लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और सारी घटना सुनाई। नबी (सल्ल०) ने पूछा, "तुमको अबू-अम्र ने कितनी बार तलाक़ दी।" उन्होंने कहा कि तीन बार। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अब तुम्हारा नान-नफ़्क़ा अबू-अम्र पर वाजिब नहीं है।"
इसलिए फ़ुक़हा का फ़ैसला है कि इद्दत के ज़माने में औरत का नान-नफ़्क़ा तलाक़ देनेवाले मर्द के ज़िम्मे है। इसलिए इस रिवायत की तशरीह के सिलसिले में फ़िक़्ह की किताबों में चर्चाएँ मिलती हैं।

फ़ातिमा (रज़ि०) को निकाह का पैग़ाम दिया। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का ख़याल था कि नबी (सल्ल०) ख़ुद उनसे निकाह कर लेंगे लेकिन अल्लाह की रिज़ा इसमें नहीं थी। इसलिए जब उन्होंने अपने दूसरे निकाह के सिलसिले में नबी (सल्ल०) से सलाह ली तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मुआविया ग़रीब हैं, अबू-जह्म का मिज़ाज सख़्त है, तुम उसामा-बिन-ज़ैद से निकाह कर लो।"

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) उलझन में पड़ गईं। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम्हें झिझक क्यों है? अल्लाह और अल्लाह के रसूल की बात मान लो, इसी में तुम्हारी भलाई है।"

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) का हुक्म मान लिया और उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि०) से निकाह कर लिया। वे बड़े ऊँचे मर्तबे के सहाबी थे। नबी (सल्ल०) को उनसे इतना लगाव था कि वे हिब्बुन-नबी यानी नबी (सल्ल०) के महबूब के लक़ब से मशहूर थे। सहीह मुस्लिम में हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) से रिवायत है कि, "उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि०) से निकाह के बाद मेरी इज़्ज़त बढ़ गई।"

सन् 24 हिजरी में हज़रत उमर (रज़ि०) ने शहादत पाई तो मजलिसे-शूरा के इजतिमा हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) के मकान ही में होते थे। चूँकि वे बहुत अक़्लमन्द, विवेकशील और मामलों को समझकर दुरुस्त सलाह देनेवाली ख़ातून थीं, इसलिए मजलिसे-शूरा के सदस्य उनसे मशवरा भी लिया करते थे।

सन् 54 हिजरी में हज़रत उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ तो हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को सख़्त सदमा पहुँचा। इसके बाद वे जब तक ज़िन्दा रहीं, उन्होंने कोई और निकाह नहीं किया। वे अपने भाई ज़हहाक-बिन-क़ैस के साथ रहती थीं। यज़ीद-बिन-मुआविया ने जब उनके भाई को इराक़ का गर्वनर बनाया तो वे उनके साथ ही कूफ़ा चली गईं और वहीं रहने लगीं।

सहीह मुस्लिम में हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के ताल्लुक़ से एक ख़ास घटना बयान की गई है। मरवान-बिन-हकम की हुकूमत के ज़माने में हज़रत सईद-बिन-ज़ैद (रज़ि०) की बेटी को उनके शौहर अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-उसमान ने तलाक़ दे दी। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) उनकी ख़ाला थीं, इसलिए उन्होंने हमदर्दी में उनको कहला भेजा कि तुम मेरे घर आ जाओ। मरवान को जब पता चला तो उसने हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के पास क़बीसा को भेजा और मालूम किया, "आप एक तलाक़शुदा ख़ातून को उसकी इद्दत का ज़माना पूरा होने से पहले घर से क्यों निकालती हैं?"

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने जवाब दिया, "नबी (सल्ल०) ने मुझे ख़ुद मेरी इद्दत के दिनों में मेरे चचेरे भाई इब्ने-उम्मे-मकतूम (रज़ि०) के पास रहने की इजाज़त दी थी, इसलिए मैंने अपनी भाँजी को इद्दत पूरी होने से पहले ही अपने पास बुला भेजा है।"

मरवान ने उनकी बात को कोई अहमियत नहीं दी और तलाक़शुदा ख़ातून को इद्दत के दिनों में अपने घर में ही रहने का हुक्म दिया।

अल्लामा सय्यद सुलैमान नदवी (रह०) ने सीरते-आइशा (रज़ि०) नामी किताब में इस घटना को बयान किया है कि "इस्लाम में हुक्म है कि तलाक़शुदा औरतें इद्दत के दिन अपने शौहर के ही घर में गुज़ारें और इस हुक्म के ख़िलाफ़ सिर्फ़ एक फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस की गवाही है कि उनके शौहर ने उनको तलाक़ दे दी तो वे नबी (सल्ल०) के हुक्म से अपने शौहर का घर छोड़कर दूसरे घर में जाकर रहीं। फ़ातिमा (रज़ि०) इस घटना को बयान करके इद्दत के दिनों में मकान बदलने की इजाज़त की दलील देती थीं। हज़रत आइशा (रज़ि०) के ज़माने में एक शरीफ़ बाप ने अपनी तलाक़शुदा बेटी को शौहर के यहाँ से बुलवा लिया। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने इस्लाम के इस हुक्म की नाफ़रमानी पर आवाज़ उठाई और मरवान को, जो उस वक़्त मदीना का गर्वनर था,

कहला भेजा कि तुम सरकारी हैसियत से इस मामले में दख़ल दो, और फ़रमाया कि इस घटना को आम लोगों के लिए नमूना नहीं बनाया जा सकता। चूँकि फ़ातिमा (रज़ि०) का घर शहर के किनारे था और रात को जानवरों का डर रहता था इसलिए नबी (सल्ल०) ने उनको इजाज़त दी थी।

सीरत-निगारों ने हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का ज़माना नहीं लिखा, लेकिन कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) की मक्का की ख़िलाफ़त के ज़माने तक वे ज़िन्दा थीं।

सीरत-निगारों का बयान है कि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) अच्छी सूरत और अच्छे अख़लाक़ की मालकिन थीं। वे अक़्लमन्द और इल्म रखनेवाली ख़ातून थीं। मेहमानों की आवभगत करने में उन्हें बड़ी ख़ुशी होती थी। एक बार उनके शागिर्द शअ्बी (रह०) उनके पास आए तो उन्होंने छुहारों और सत्तुओं से उनकी ख़ातिर की।

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) से चौंतीस हदीसें रिवायत की गई हैं। इनसे रिवायत करनेवालों में क़ासिम-बिन-मुहम्मद (रह०), अबू-सलमा (रह०), सईद-बिन-मुसय्यिब (रह०), उरवा-बिन-ज़ुबैर (रह०) सलमान-बिन-यसार (रह०) और शअ्बी (रह०) जैसे बड़े-बड़े ताबिईन शामिल हैं।

हज़रत उम्मे-फ़रदा (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-फ़रदा (रज़ि०) का ताल्लुक़ क़ुरैश के ख़ानदान बनू-तैम से था। वे हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की बहन थीं।

नसब का सिलसिला यह है: उम्मे-फ़रदा-बिन्ते-अबू-क़ुहाफ़ा उसमान-बिन-आमिर-बिन-अम्र-बिन-काब-बिन-साद-बिन-तैम-बिन-मुर्रा-बिन-काब-बिन-लुऐ।

सीरत-निगारों ने उनके इस्लाम क़बूल करने का ज़माना नहीं लिखा, लेकिन इनके ईमान लाने और सहाबियात में शामिल होने पर सभी सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है। इनकी शादी हज़रत अशअस-बिन-क़ैस से हुई थी। हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने लिखा है कि अशअस-बिन-क़ैस (रज़ि०) यमन के एक इलाक़े 'किन्दा' के हाकिम थे। सन् 10 हिजरी में वे कुछ लोगों के साथ नबी (सल्ल०) से मिलने आए और इस्लाम क़बूल कर लिया। लेकिन बदक़िस्मती से नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद वे इस्लाम से पलट जाने के फ़ितने में पड़ गए। आख़िर उन्हें गिरफ़्तार करके ख़लीफ़ा हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के पास लाया गया। उन्होंने ख़लीफ़ा के सामने अपनी ग़लती मान ली और सच्चे दिल से तौबा कर ली। इसपर अबू-बक्र (रज़ि०) ने उन्हें न सिर्फ़ माफ़ कर दिया बल्कि अपनी बहन उम्मे-फ़रदा (रज़ि०) से उनका निकाह भी कर दिया।

निकाह के बाद अशअस (रज़ि०) बाज़ार गए। वहाँ ऊँटों की मंडी लग रही था। उन्होंने तलवार ख़ींच ली। जो ऊँट सामने आता गया उसकी कूँचें काटकर ज़मीन पर गिराते गए। लोगों को हैरत हुई। अशअस (रज़ि०) ने कहा कि मैं अपने वतन में होता तो कुछ और ही बात होती। यह कहकर उन्होंने ऊँटों की क़ीमत अदा कर दी और मदीनावालों से कहा कि ये आप लोगों की दावत है।

रिवायत इस तरह है—

"हज़रत अशअस (रज़ि०) ने बीसियों ऊँट मार गिराए तो मंडी में शोर मच गया कि अशअस इस्लाम-दुश्मन हो गया है। अशअस (रज़ि०) ने यह सुना तो तलवार फेंक दी और कहा कि ख़ुदा की क़सम! मैं इस्लाम-दुश्मन नहीं हुआ, बल्कि इन साहब (हज़रत अबू-बक्र रज़ि०) ने अपनी बहन का निकाह मुझसे कर दिया है, अगर आज मैं वतन में होता तो इससे बेहतर वलीमा करता। मदीनावालो! इस गोश्त को ले जाओ

और खाओ, और ऊँट के मालिको आओ और अपने ऊँटों की क़ीमत मुझसे ले लो।"

इमाम अहमद-बिन-हम्बल (रह०), तिरमिज़ी (रह०) और अबू-दाऊद (रह०) ने हज़रत उम्मे-फ़रदा (रज़ि०) से यह हदीस रिवायत की है कि नबी (सल्ल०) से पूछा गया कि सबसे बेहतर अमल कौन-सा है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नमाज़ को अव्वल वक़्त पर अदा करना।"

हज़रत उम्मे-फ़रदा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं।

एक खुशनसीब सहाबिया (रज़ि०)

मदीना के पड़ोसी इलाक़े में नबी (सल्ल०) की एक सहाबिया बहुत बीमार हो गईं। यहाँ तक कि लोग उनकी ज़िन्दगी से नाउम्मीद हो गए। लोगों का ख़याल था कि आज किसी वक़्त उनका इन्तिक़ाल हो जाएगा। नबी (सल्ल०) को मालूम हुआ तो आप (सल्ल०) ने लोगों से फ़रमाया, "उसका इन्तिक़ाल हो जाए तो मुझे ख़बर करना, मैं चाहता हूँ कि उसके जनाज़े की नमाज़ मैं पढ़ाऊँ और इसके बाद उसे दफ़न किया जाए।"

इत्तिफ़ाक़ से सहाबिया (रज़ि०) का इन्तिक़ाल देर रात को हुआ। जब उनका जनाज़ा तैयार हुआ तो नबी (सल्ल०) सो रहे थे। सहाबियों (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) को जगाना मुनासिब नहीं समझा और उन सहाबिया (रज़ि०) को रात ही में दफ़न कर दिया।

सुबह को नबी (सल्ल०) ने लोगों से उनका हाल पूछा तो उन्होंने आप (सल्ल०) को पूरी घटना सुनाई। नबी (सल्ल०) यह सुनकर खड़े हो गए। सहाबियों (रज़ि०) को साथ लेकर उन सहाबिया (रज़ि०) की क़ब्र पर तशरीफ़ ले गए और जनाज़े की नमाज़ दोबारा पढ़ी।

हज़रत तमाज़ुर-बिन्ते-असबग़ (रज़ि०)

हज़रत तमाज़ुर-बिन्ते-असबग़ (रज़ि०) 'कल्ब' क़बीले के ईसाई सरदार असबग़-बिन-अम्र कल्बी की बेटी थीं। सन् 6 हिजरी शाबान के महीने में नबी (सल्ल०) ने हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) को 'दूमतुल-जन्दल' की मुहिम पर भेजा और यह हिदायत की कि 'दूमतुल-जन्दल' पहुँचकर कल्ब क़बीले के लोगों को इस्लाम की दावत देना, अगर वे क़बूल करें तो उनके सरदार की लड़की से निकाह कर लेना। हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के हुक्म का पालन किया। क़बीले के सरदार असबग़ (रज़ि०) और उनकी क़ौम के बहुत-से लोगों ने ख़ुशी-ख़ुशी इस्लाम क़बूल कर लिया। हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के हुक्म के मुताबिक़ असबग़ (रज़ि०) की बेटी तमाज़ुर (रज़ि०) से निकाह कर लिया और उनको अपने साथ लेकर मदीना आए। तमाज़ुर (रज़ि०) उनके निकाह में सारी ज़िन्दगी रहीं, लेकिन एक रिवायत में है कि हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) ने उन्हें अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी दिनों में जब कि वे बीमार थे, तलाक़ दे दी थी।

उनके इन्तिक़ाल के बाद उन्होंने हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) से शादी कर ली लेकिन थोड़े ही दिनों के बाद उनसे भी जुदाई हो गई। कुछ रिवायतों में है कि तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उसमान (रज़ि०) ने उन्हें अब्दुर्रहमान (रज़ि०) की विरासत से हिस्सा दिया था। हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) से इनके यहाँ अबू-सलमा (रज़ि०) पैदा हुए।

सीरत निगारों ने उनके इन्तिक़ाल का साल नहीं लिखा है, लेकिन रिवायतों से मालूम होता है कि वे अमीर मुआविया (रज़ि०) की हुकूमत के ज़माने तक ज़िन्दा रहीं। कुछ सीरत-निगारों ने हज़रत तमाज़ुर (रज़ि०) की गिनती ताबिआत (मुसलमान औरतों का वह गरोह जिसने एक या एक से ज़्यादा सहाबियों को देखा हो) में की है, लेकिन यह बात ख़याल

में भी नहीं आ सकती कि एक मुस्लिम ख़ातून, जो नबी (सल्ल०) के ज़माने में मदीना में रहती हों और एक ऊँचे मर्तबेवाले सहाबी की बीवी भी हों सहाबियत की ख़ुशनसीबी से महरूम रहें।

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अबू-सलमा (रज़ि०)

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अबू-सलमा (रज़ि०) उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) की बेटी थीं, जो उनके पहले शौहर हज़रत अबू-सलमा-बिन-अब्दुल-असद मख़ज़ूमी (रज़ि०) से पैदा हुईं।

नसब का सिलसिला यह है : ज़ैनब-बिन्ते-अबू-सलमा-बिन-अब्दुल-असद-बिन-हिलाल-बिन-अब्दुल्लाह-बिन-उमर-बिन-मख़ज़ूम क़ुरशी।

हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के फुफेरे भाई भी थे और दूध-शरीक भाई भी। इस रिश्ते से हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की भतीजी थीं (बर्रा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब हज़रत ज़ैनब रज़ि० की दादी थीं और नबी सल्ल० की फूफी)। इनकी पैदाइश के बारे में रिवायतों में बड़ा मतभेद है। कुछ रिवायतों में है कि वे हबशा में पैदा हुईं, जहाँ उनके माँ-बाप मक्का से हिजरत करके जा बसे थे। हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) हबशा में कुछ साल गुज़ारकर मक्का वापस आ गए और फिर वहाँ से मदीना की तरफ़ हिजरत की।

मौलाना सईद अंसारी (रह०) ने लिखा है कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने अपने माँ-बाप के साथ हिजरत की। अगर यह मान लिया जाए कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की पैदाइश हबशा में हुई तो फिर उन्होंने माँ-बाप के साथ नहीं, बल्कि माँ के साथ हिजरत की होगी, क्योंकि दोनों मियाँ-बीवी की हिजरत में एक साल का फ़र्क़ है। हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) ने सन् 12 नबवी में मदीना हिजरत की और हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने सन् 13 नबवी में। उस वक़्त उनकी उम्र तीन-चार साल

ज़रूर रही होगी। लेकिन कुछ सीरत-निगारों का कहना है कि हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 4 हिजरी में हुआ, उस वक़्त हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) दूध-पीती बच्ची थीं। हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) का बयान है कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को हज़रत असमा-बिन्ते-अबू-बक्र (रज़ि०) ने दूध पिलाया।

इद्दत के दिन गुज़ारने के बाद जब हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) का निकाह नबी (सल्ल०) के साथ हुआ तो नन्हीं ज़ैनब (रज़ि०) माँ के साथ नबी (सल्ल०) के घर आईं और आप (सल्ल०) ने ही उनकी परवरिश और तरबियत की। इनका अस्ल नाम बर्रा था, नबी (सल्ल०) ने बदलकर ज़ैनब रखा।

कुछ रिवायतों से यह पता चलता है कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) 3 हिजरी में अपने बाप हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद पैदा हुईं। हमारी जाँच के मुताबिक़ जिन रिवायतों में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की पैदाइश हबशा बताई गई है वे दुरुस्त नहीं हैं, क्योंकि इब्ने-हिशाम ने मुहम्मद-बिन-इसहाक़ के हवाले से ख़ुद हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) से यह रिवायत नक़ल की है कि जिस वक़्त मैंने सन् 13 नबवी में हिजरत की, मेरी गोद में एक ही बच्चा (सलमा-बिन-अबू-सलमा) था। इस रिवायत से साबित होता है कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) मदीना में नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद पैदा हुईं। सन् 4 हिजरी में जब हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) उम्मुल-मोमिनीन बनीं उस वक़्त हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) दूध-पीती बच्ची थीं। इस तरह, अनुमान है कि उनकी पैदाइश सन् 3 हिजरी में हुई।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के दूध-पीती बच्ची होने की पुष्टि मुसनद अहमद-बिन-हम्बल (रह०) और इब्ने-साद की रिवायतों से भी होती है कि हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) बहुत शर्मीली थीं। नबी (सल्ल०) से निकाह के बाद कुछ मुद्दत तक उनका यह हाल रहा कि जब नबी

(सल्ल०) तशरीफ़ लाते तो वे शर्म से अपनी नन्हीं बच्ची (ज़ैनब) को गोद में लेकर दूध पिलाने लगतीं। नबी (सल्ल०) यह देखकर वापस हो जाते। हज़रत अम्मार-बिन-यासिर (रज़ि०) जो हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) के दूध-शरीक भाई थे, को जब यह मालूम हुआ तो वे नाराज़ हुए और कुछ दिनों के लिए हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को अपने घर ले गए।

नबी (सल्ल०) को नन्हीं ज़ैनब (रज़ि०) से बड़ी मुहब्बत थी। वे आप (सल्ल०) की रबीबा (सौतेली बेटी) भी थीं और भतीजी भी। नबी (सल्ल०) कभी ग़ुस्ल फ़रमा रहे होते और नन्हीं ज़ैनब (रज़ि०) धीरे-धीरे चलती हुई आप (सल्ल०) के पास चली जातीं तो आप (सल्ल०) प्यार से उनके मुँह पर पानी छिड़कते थे। सीरत-निगारों ने लिखा है कि उस पानी की बरकत से हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के चेहरे पर बुढ़ापे में भी जवानी की चमक-दमक बाक़ी रही।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) जब बड़ी हुईं तो उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने उनकी शादी अपने भाँजे अब्दुल्लाह-बिन-ज़मआ (रज़ि०) से कर दी। उनसे छः लड़के और तीन लड़कियाँ पैदा हुईं।

सन् 63 हिजरी में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को एक बड़ा सदमा सहना पड़ा। उनके दो बेटे यज़ीद-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) और कसीर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) हर्रा की घटना में शहीद हो गए। जब उनकी लाशें हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के सामने लाई गईं तो उन्होंने "इन्ना-लिल्लाहि-व-इन्ना इलैहि-राजिऊन" पढ़कर फ़रमाया, "मुझपर बड़ी मुसीबत आई, मेरा एक बेटा तो मैदान में लड़कर शहीद हुआ, लेकिन दूसरा तो घर में था, ज़ालिमों ने उसे घर में घुसकर बिना वजह क़त्ल किया।" इसके बाद बड़ी हिम्मत और सब्र से अपने बेटों के कफ़न-दफ़न का इन्तिज़ाम किया। इस घटना के दस साल बाद सन् 73 हिजरी में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ। बक़ीअ के क़ब्रिस्तान में

दफ़न की गईं। उनके जनाज़े में मशहूर सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) भी शरीक हुए।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की परवरिश और तरबियत नबी (सल्ल०) ने की थी। इसलिए वे इल्म व फ़ज़्ल में बड़ा ऊँचा दर्जा रखती थीं। अल्लामा इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) और अल्लामा इब्ने-असीर (रह०) लिखते हैं—

"वे अपने ज़माने की महान फ़क़ीहा (इस्लामी धर्म-शास्त्र की जाननेवाली) ख़ातून थीं।"

सीरत-निगारों ने यह भी लिखा है कि बड़े-बड़े इल्म जाननेवाले लोग भी हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से मसाइल पूछा करते थे।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) का बयान है कि हज़रत अबू-राफ़े (रज़ि०) कहते हैं, "जब भी मैंने मदीना की किसी फ़क़ीह औरत की चर्चा की तो ज़ैनब-बिन्ते-अबू-सलमा (रज़ि०) को ज़रूर याद किया।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से कुछ हदीसें भी रिवायत की गई हैं। इनसे रिवायत करनेवालों में इमाम ज़ैनुल-आबिदीन (रह०) और उरवा-बिन-ज़ुबैर (रह०) जैसे बुलन्द मर्तबा लोग भी शामिल हैं।

हज़रत दुर्रा-बिन्ते-अबू-सलमा (रज़ि०)

हज़रत दुर्रा (रज़ि०) हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अबू-सलमा (रज़ि०) की सगी बहन थीं। उनके बाप हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद नबी (सल्ल०) ने ही उनकी परवरिश की।

सहीह बुख़ारी में है कि एक बार उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से पूछा कि हमने सुना है कि आप दुर्रा से निकाह करना चाहते हैं?

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह कैसे हो सकता है! अगर मैंने उसकी परवरिश न भी की होती तब भी मेरा निकाह उससे जाइज़ नहीं हो सकता था, क्योंकि वह मेरे दूध-शरीक भाई की बेटी है।"

एक रिवायत में उनका नाम रुक़ैया भी आया है। इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत हबीबा-बिन्ते-उबैदुल्लाह (रज़ि०)

हज़रत हबीबा-बिन्ते-उबैदुल्लाह (रज़ि०) उम्मे-हबीबा-बिन्ते-अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) की बेटी थीं। वे उनके पहले शौहर हज़रत उबैदुल्लाह-बिन-जह्श से थीं।

नसब का सिलसिला यह है : हबीबा-बिन्ते-उबैदुल्लाह-बिन-जह्श-बिन-रिआब-बिन-यअमुर-बिन-सबरा-बिन-मुर्रा-बिन-कसीर-बिन-ग़न्म-बिन-दूदान-बिन-असद-बिन-ख़ुज़ैमा।

उनकी दादी उमैमा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब नबी (सल्ल०) की फूफी थीं। इस रिश्ते से उनके बाप उबैदुल्लाह नबी (सल्ल०) के फुफेरे भाई थे और वे आप (सल्ल०) की भतीजी थीं।

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) और उबैदुल्लाह-बिन-जह्श दोनों ने नुबूवत के शुरू के ज़माने में इस्लाम क़बूल किया और सन् 6 नबवी में हिजरत करके हबशा चले गए। हज़रत हबीबा (रज़ि०) वहीं पैदा हुईं। बदक़िस्मती से उबैदुल्लाह हबशा में बुरी संगति में पड़ गए और इस्लाम से मुँह मोड़कर ईसाई बन गए। साथ ही बहुत ज़्यादा शराब पीने लगे और इसी हालत में उनका इन्तिक़ाल हो गया।

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) अपनी नन्हीं बच्ची के साथ परदेस में बेसहारा रह गईं। कुछ मुद्दत के बाद नबी (सल्ल०) ने उन्हें निकाह का पैग़ाम भेजा, जिसे उन्होंने क़बूल कर लिया। हबशा के बादशाह नज्जाशी ने उनका ग़ायबाना निकाह नबी (सल्ल०) से कर दिया। हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर मदीना आईं तो नबी

(सल्ल०) ने उनकी बच्ची हज़रत हबीबा (रज़ि०) की ज़िम्मेदारी भी ले ली और बड़ी मुहब्बत से उनकी परवरिश की। हज़रत हबीबा (रज़ि०) का निकाह दाऊद-बिन-उरवा-बिन-मसऊद से हुआ जो बनू-सक़ीफ़ के रईस थे।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत सलमा (रज़ि०)

नबी (सल्ल०) की ख़ादिमा

हज़रत सलमा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की कनीज़ (दासी) थीं लेकिन नबी (सल्ल०) ने उन्हें आज़ाद करके अपने ग़ुलाम हज़रत अबू-राफ़े (रज़ि०), जिन्हें आप (सल्ल०) पहले ही आज़ाद कर चुके थे, से उनका निकाह कर दिया था।

हज़रत सलमा (रज़ि०) ने इतनी लगन से नबी (सल्ल०) की ख़िदमत की कि लोगों में नबी (सल्ल०) की ख़ादिमा (सेविका) के नाम से मशहूर हो गईं। जब हज़रत मारिया क़िब्तीया (रज़ि०) की कोख से नबी (सल्ल०) के बेटे इबराहीम पैदा हुए तो हज़रत सलमा (रज़ि०) ने ही 'दाई' की ज़िम्मेदारी निभाई। उनके शौहर हज़रत अबू-राफ़े (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) को इबराहीम की पैदाइश की ख़ुशख़बरी सुनाई तो आप (सल्ल०) ने उन्हें एक ग़ुलाम इनाम में दिया।

नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद एक बार हज़रत हसन (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) हज़रत सलमा (रज़ि०) के पास गए और कहा कि आप हमें वह खाना पकाकर खिलाएँ जो नबी (सल्ल०) को पसन्द था। वे बोलीं, "तुम्हें वह क्या पसन्द आएगा!" उन्होंने बार-बार कहा तो हज़रत सलमा (रज़ि०) ने जौ का आटा पीसकर हाँडी में चढ़ा दिया और ऊपर से ज़ैतून का तेल, ज़ीरा और काली मिर्चे

डाल दीं। पक गया तो उनके सामने रखा और कहा कि यह खाना नबी (सल्ल०) को बहुत पसन्द था।

हज़रत सलमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात का पता नहीं चलता।

हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०)

हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की प्यारी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की कनीज़ (दासी) थीं। वे हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के पास कब आईं, सीरत-निगारों ने इसे बयान नहीं किया। लेकिन रिवायतों से साबित है कि वे अपनी ज़िन्दगी की आख़िरी साँस तक नबी (सल्ल०) के ख़ानदान से जुड़ी रहीं। सभी सीरत-निगारों का इसपर इत्तिफ़ाक़ है कि वे सहाबिया थीं। कुछ रिवायतों में है कि उनका असली नाम मैमूना था, नबी (सल्ल०) ने बदलकर फ़िज़्ज़ा रखा। कुछ सीरत-निगारों ने लिखा है कि वे हबशा की रहनेवाली थीं। कई रिवायतों में उनका नाम "फ़िज़्ज़तुन-नौबिया" भी लिखा गया है।

हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) न सिर्फ़ घर के काम-काज में हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का हाथ बटाती थीं, बल्कि उनके हर दुख-सुख में साथ रहती थीं। हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की ख़िदमत में रहने की वजह से उनका दर्जा इल्म व फ़ज़्ल में भी बहुत बुलन्द हो गया था। उन्हें हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) से बड़ी मुहब्बत थी।

अल्लामा तबरी (रह०) का बयान है कि जब हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ तो उनको ग़ुस्ल देने के वक़्त हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) भी मौजूद थीं। जब हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का जनाज़ा उठने लगा तो हज़रत अली (रज़ि०) ने घरवालों को इस तरह पुकारा, "ऐ उम्मे-कुलसूम, ऐ ज़ैनब, ऐ फ़िज़्ज़ा, ऐ हसन, ऐ हुसैन आओ और अपनी माँ को आख़िरी बार देख लो, अब तुम्हारी जुदाई हो रही है, फिर जन्नत

में ही मुलाक़ात होगी।" मानो हज़रत अली के नज़दीक हज़रत फ़िज़्ज़ा भी उनके घर की एक सदस्य थीं।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अली (रज़ि०) के हिस्से में आ गईं। वे कर्बला की मुसीबत में भी उनके साथ-साथ रहीं। एक रिवायत में है कि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत अली (रज़ि०) ने हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) का निकाह अबू-सअ्लबा हबशी (रज़ि०) से कर दिया था, उनसे एक लड़का पैदा हुआ। अबू-सअ्लबा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद उनका निकाह अबू-सलीक ग़तफ़ानी से हुआ। कुछ सीरत-निगारों ने लिखा है कि हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) की एक बेटी (मिस्का) और पाँच बेटे थे।

हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल किस साल हुआ, इसके बारे में कोई ठोस रिवायत नहीं मिलती। कुछ सीरत-निगारों के मुताबिक़ हज़रत फ़िज़्ज़ा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अली (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के कुछ साल बाद हुआ और उनकी क़ब्र हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की क़ब्र के साथ सीरिया में है।

हज़रत आतिका-बिन्ते-ज़ैद (रज़ि०)

हज़रत आतिका-बिन्ते-ज़ैद (रज़ि०) क़ुरैश के अदी ख़ानदान से ताल्लुक़ रखती थीं। नसब का सिलसिला यह है :

आतिका-बिन्ते-ज़ैद-बिन-अम्र-बिन-नुफ़ैल-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बिन-रियाह-बिन-अब्दुल्लाह-बिन-कुर्त-बिन-ज़राह-बिन-अदी-बिन-काब-बिन-लुऐ।

बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत सईद-बिन-ज़ैद (रज़ि०), जिन्हें नबी (सल्ल०) ने इसी दुनिया में जन्नती होने की ख़ुशख़बरी सुनाई, इनके सगे भाई थे और हज़रत उमर (रज़ि०) उनके चचेरे भाई। मशहूर सहाबिया हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-ख़त्ताब (रज़ि०) इनकी बहन भी थीं और भावज भी।

हज़रत आतिका (रज़ि०) के बाप ज़ैद उन लोगों में थे जो जाहिलियत के ज़माने में ही तौहीद यानी एक अल्लाह पर यक़ीन रखते थे और जिनके बारे में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया था कि वे क़ियामत के दिन अकेले एक उम्मत की हैसियत से उठेंगे। ज़ैद को नबी (सल्ल०) की नुबूवत से पहले ही किसी दुश्मन ने क़त्ल कर डाला और आतिका यतीम हो गई थीं।

जब वे बड़ी और समझदार हुईं तो उन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया और उन्हें सहाबियात में शामिल होने की खुशनसीबी भी हासिल हुई। उनकी शादी हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के बेटे हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) से हुई थी। हज़रत आतिका (रज़ि०) बहुत ख़ूबसूरत और समझदार ख़ातून थीं। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को उनसे इतनी मुहब्बत थी कि उनकी चाहत में जिहाद तक को छोड़ दिया। वे भी अपने शौहर पर जान छिड़कती थीं और हमेशा अपने आराम से बढ़कर उनके आराम का ख़याल रखती थीं। चूँकि उन्होंने हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को जिहाद पर जाने के लिए मजबूर नहीं किया, इसलिए हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को हुक्म दिया कि वे आतिका (रज़ि०) को तलाक़ दे दें। पहले तो वे टालते रहे लेकिन जब हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने सख़्ती से हुक्म दिया तो उन्होंने हज़रत आतिका (रज़ि०) को एक तलाक़ दे दी, लेकिन उनकी जुदाई ने उन्हें निढाल कर दिया और उन्होंने यह अशआर कहे—

"ऐ आतिका जब तक सूरज चमकता रहेगा,
और क़ुमरी बोलती रहेगी, मैं तुझे न भूलूँगा।
ऐ आतिका मेरा दिल रात-दिन,
बड़ी तमन्ना और शौक़ से तुझसे लगा हुआ है,
मुझ जैसे आदमी ने इस जैसी ख़ातून को कभी तलाक़ न दी होगी,

और न इस जैसी ख़ातून को बग़ैर किसी गुनाह तलाक़ दी जाती।"

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) बड़े नर्म दिल थे। उन्होंने जब ये अशआर सुने तो उन्होंने हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को इजाज़त दे दी कि वे हज़रत आतिका (रज़ि०) को अपने निकाह में रोक लें। इसके बाद हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) हर जिहाद में शरीक होने लगे। ताइफ़ की घेराबन्दी में एक दिन वे दुश्मन की तरफ़ से आनेवाले एक तीर से सख़्त ज़ख़्मी हो गए। यह ज़ख़्म उस वक़्त तो भर गया लेकिन तीर का ज़हर अन्दर ही अन्दर फैलता रहा। नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद (शव्वाल 11 हिजरी) यह ज़ख़्म दोबारा उभर गया और उसी के सदमे से हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हो गया। हज़रत आतिका (रज़ि०) को उनके इन्तिक़ाल से सख़्त सदमा पहुँचा। अपने मरहूम शौहर की तरह वे भी शेर-शायरी में महारत रखती थीं। इस मौक़े पर उन्होंने एक दर्द-भरा मरसिया कहा, जिसके कुछ अशआर ये हैं—

"क़सम खाकर कहती हूँ कि तेरे ग़म में मेरी आँख
रोएगी और मेरा जिस्म धूल में अटा रहेगा,
ख़ुशनसीब है वह आँख जिसने तुझ जैसा बहादुर
और बरसते तीरों की बौछार में घुसता हुआ साबित-क़दम जवान देखा,
वह उस वक़्त तक मौत की तरफ़ चलता रहता
जब तक कि ख़ून की नदियाँ न बहा लेता
ज़िन्दगी-भर जब तक जंगली कबूतर गुनगुनाएगा, (रोती रहूँगी)
और जब तक रात पर सुबह आती रहे।"

कुछ मुद्दत के बाद हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) ने हज़रत आतिका (रज़ि०) से निकाह कर लिया। वलीमे की दावत में हज़रत अली (रज़ि०)

भी मौजूद थे। उन्होंने हज़रत आतिका (रज़ि०) को ऊपरवाले मरसिये का पहला शेर याद दिलाया तो रोने लगीं। हज़रत उमर (रज़ि०) से भी उनकी मुहब्बत और वफ़ादारी मिसाली रही। हज़रत उमर (रज़ि०) शहीद हुए तो उन्होंने दर्दनाक मरसिया कहा जिसके कुछ अशआर ये हैं–

"कौन समझाए इस नफ़्स को जिसके ज़ख़्म फिर उभर आए हैं,
और उस आँख को जिसे जागते रहने की वजह से तकलीफ़ है,
और उस जिस्म को जो कफ़न में लपेटा गया है,
अल्लाह तआला की उसपर रहमत हो
क़र्ज़दार और ग़रीब रिश्तेदारों को
इसका सदमा है।"

हज़रत उमर (रज़ि०) की शहादत के बाद हज़रत आतिका (रज़ि०) का निकाह हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम (रज़ि०) से हुआ। जमल की लड़ाई के मौक़े पर इब्ने-जुरमूज़ ने उन्हें शहीद कर दिया तो हज़रत आतिका (रज़ि०) दुख से निढाल हो गईं और उन्होंने यह मरसिया कहा–

इब्ने-जुरमूज़ ने लड़ाई के दिन एक हिम्मतवाले घुड़सवार से ग़द्दारी की,

और ग़द्दारी भी ऐसी हालत में कि वह निहत्था और बेसरो-सामान था,

ऐ अम्र, अगर तू उसे पहले होशियार कर देता तो,

उसको ऐसा शख़्स पाता कि न उसके दिल में डर होता, न उसके हाथ काँपते।

कितनी मुसीबतें हैं कि वह उनमें घुस गया,

ऐ बंदरिया के बेटे, तू उसको झुका या पछाड़ न सका,

तेरी माँ तुझपर रोए अगर तू उस जैसे किसी शख़्स पर ग़ालिब आ गया है

जो वफ़ात पा चुका हो या ज़िन्दा हो

ख़ुदा की क़सम! तूने एक मुसलमान को नाहक़ क़त्ल किया

तुझपर ज़रूर अल्लाह का अज़ाब नाज़िल होगा।"

हज़रत आतिका (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत सलमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०)

हज़रत सलमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की बीवी थीं। उनका ताल्लुक़ ख़सअम क़बीले से था।

नसब का सिलसिला यह है : सलमा-बिन्ते-उमैस-बिन-माद-बिन-हारिस-बिन-तैम-बिन-काब-बिन-मालिक-बिन-कुहाफ़ा-बिन-आमिर-बिन-रबीआ-बिन-आमिर-बिन-मुआविया-बिन-ज़ैद-बिन-मालिक-बिन-बशर-बिन-वहबुल्लाह-बिन-शहरान-बिन-अफ़रस-बिन-ख़लफ़-बिन-अफ़तल(ख़सअम)।

माँ का नाम हिन्द या ख़ौला-बिन्ते-औफ़ था। उनका ताल्लुक़ किनाना क़बीले से था।

बुलन्द मर्तबा सहाबिया असमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०) (जिनका निकाह पहले हज़रत जाफ़र (रज़ि०) से, उनकी शहादत के बाद हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से और उनके इन्तिक़ाल के बाद हज़रत अली (रज़ि०) से हुआ) हज़रत सलमा (रज़ि०) की सगी बहन थीं, जबकि उम्मुल-मोमिनीन हज़रत मैमूना (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-फ़ज़्ल (रज़ि०), जो कि नबी (सल्ल०) के चचा हज़रत अब्बास (रज़ि०) की बीवी थीं, उनकी माँ शरीक बहनें थीं।

हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की बेटी हज़रत उमामा (रज़ि०) हज़रत सलमा (रज़ि०) की कोख से पैदा हुई थीं। हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की शहादत के बाद हज़रत सलमा (रज़ि०) का निकाह शद्दाद-बिन-उसामतुल-हादी से हुआ। उनसे दो बेटे हज़रत अब्दुल्लाह और हज़रत

अब्दुर्रहमान पैदा हुए। हज़रत सलमा (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उमामा-बिन्ते-हमज़ा (रज़ि०)

हज़रत उमामा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की बेटी थीं, जो सलमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०) की कोख से पैदा हुईं। सन् 3 हिजरी में जब हज़रत हमज़ा (रज़ि०) शहीद हुए, वे बहुत छोटी थीं।

सहीह बुख़ारी में है कि सन् 7 हिजरी में नबी (सल्ल०) उमरतुल-क़ज़ा के लिए मक्का तशरीफ़ ले गए। हुदैबिया की सुलह के मुताबिक़ जब आप (सल्ल०) तीन दिन मक्का में गुज़ारकर चलने लगे तो उमामा-बिन्ते-हमज़ा (रज़ि०) "चचा! चचा!" कहती आप (सल्ल०) की तरफ़ दौड़ती हुई आईं। एक रिवायत में है कि वे भाई! भाई!" कहकर पुकार रही थीं।

नबी (सल्ल०) हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के दूध-शरीक और ख़लेरे भाई भी थे और उनके भतीजे भी थे। इस तरह आप (सल्ल०) उमामा (रज़ि०) के चचा भी होते थे और भाई भी।

हज़रत अली (रज़ि०) ने उनको गोद में उठा लिया और अपने साथ ले जाकर हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के हवाले कर दिया कि यह तुम्हारे चचा की बेटी है।

हज़रत अली (रज़ि०) के भाई हज़रत जाफ़र (रज़ि०) और हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) ने हज़रत उमामा (रज़ि०) की परवरिश की ज़िम्मेदारी लेने के लिए नबी (सल्ल०) के सामने अलग-अलग दावे पेश किए। हज़रत अली (रज़ि०) कहते थे कि उमामा (रज़ि०) मेरे चचा की लड़की है, इसलिए इसकी परवरिश का मैं हक़दार हूँ। हज़रत जाफ़र (रज़ि०) यह कहकर अपना हक़ जताते थे कि यह मेरे चचा की बेटी है

और मेरी बीवी असमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०) की सगी भाँजी है। हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) कहते थे कि यह मेरे दीनी भाई, हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की लड़की है।

नबी (सल्ल०) ने इस झगड़े का फ़ैसला हज़रत जाफ़र (रज़ि०) के हक़ में किया क्योंकि उनकी बीवी हज़रत असमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०) हज़रत उमामा (रज़ि०) की सगी ख़ाला थीं और ख़ाला माँ के बराबर होती है।

हज़रत उमामा (रज़ि०) जब बड़ी हुईं तो उनका निकाह सलमा-बिन-अबू-सलमा (रज़ि०) या दूसरी रिवायतों के मुताबिक़ उमर-बिन-अबू-सलमा (रज़ि०) से हुआ जो उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) के बेटे और नबी (सल्ल०) के सौतेले बेटे थे।

हज़रत उमामा-बिन्ते-हमज़ा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-फ़ज़्ल-बिन्ते-हमज़ा (रज़ि०)

सीरत-निगारों ने हज़रत उमामा (रज़ि०) के अलावा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की एक और बेटी उम्मे-फ़ज़्ल (रज़ि०) की भी चर्चा की है और लिखा है कि वे भी सहाबिया थीं। अब्दुल्लाह-बिन-शद्दाद (रज़ि०) ने उनसे रिवायत की है कि हमारा एक आज़ाद किया हुआ ग़ुलाम मर गया था, उसकी एक बेटी और एक बहन थी। नबी (सल्ल०) ने दोनों को आधी-आधी विरासत दिलाई। इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत अमरा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

हज़रत अमरा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) ख़ुज़ाआ के ख़ानदान बनू-मुस्तलिक़ से ताल्लुक़ रखती थीं।

नसब का सिलसिला यह है : अमरा-बिन्ते-हारिस-बिन-अबू-ज़रार-बिन-हबीब-बिन-आइज़-बिन-मालिक-बिन-जुज़ैमा।

ये उम्मुल-मोमिनीन हज़रत जुवैरिया-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) की बहन थीं। इन्होंने इस्लाम क़बूल किया और इन्हें सहाबियात में शामिल होने की ख़ुशनसीबी भी हासिल हुई। हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने लिखा है कि हज़रत अमरा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) ने हदीस "दुनिया शादाब व शीरीं लगती है" रिवायत की है।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-वलीद (रज़ि०)

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-वलीद (रज़ि०) क़ुरैश के ख़ानदान बनू-अब्दे-शम्स से ताल्लुक़ रखती थी।

नसब का सिलसिला यह है: फ़ातिमा-बिन्ते-वलीद-बिन-उत्बा-बिन-रबीआ-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-मनाफ़-बिन-क़ुसय्य।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का दादा उत्बा-बिन-रबीआ क़ुरैश का नामी रईस था और बाप भी क़ुरैश का बहादुर और अमीर आदमी था। उनके बाप और दादा दोनों ज़िन्दगी की आख़िरी साँस तक कुफ़्र और शिर्क की भूल-भुलइयों में भटकते रहे और सन् 2 हिजरी में बद्र की लड़ाई में मारे गए। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) और उनके चचा हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा-बिन-उत्बा (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल किया और दोनों को सहाबियों में शामिल होने की ख़ुशनसीबी भी हासिल हुई।

हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) ने अपनी नेक भतीजी का निकाह अपने मुँह-बोले बेटे और आज़ाद किए हुए ग़ुलाम हज़रत सालिम (रज़ि०) से, जो सालिम-मौला-अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) के नाम से मशहूर हैं, कर दिया। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को हिजरत की ख़ुशनसीबी भी हासिल हुई। वे बड़ी नेक दिल सहाबिया थीं।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-हंज़ला (रज़ि०)

सीरत-निगारों ने हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-हंज़ला (रज़ि०) की गिनती सहाबियात में की है और लिखा है कि नबी (सल्ल०) ने उनका निकाह हज़रत उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि०) से कर दिया था। लेकिन दोनों में निभ न सकी और तलाक़ हो गई। इसके बाद उनका निकाह मशहूर सहाबी हज़रत नुऐमुन-नह्हाम अदवी (रज़ि०) से हुआ, जिनसे उनके बेटे इबराहीम पैदा हुए।

क़ाज़ी मुहम्मद सुलैमान सलमान मंसूरपुरी (रह०) ने "रहमतुल-लिल-आलमीन" भाग-3 में लिखा है कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) उस बड़े ख़ानदान से ताल्लुक़ रखती थीं कि "शाहज़ादा इमरुउल-क़ैस" उनके पूर्वजों का प्रशंसक था।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत सहला-बिन्ते-आसिम क़ुज़ाईया (रज़ि०)

हज़रत सहला (रज़ि०) का ताल्लुक़ बली क़बीले से था, जो क़ुज़ाआ़ की एक शाख़ था और क़ुज़ाआ के बारे में अल्लामा इब्ने-साद ने लिखा है कि क़ुज़ाआ़ के लोग मदीना के अंसार थे। उन्होंने नबी (सल्ल०) की हिजरत से कुछ पहले या बाद इस्लाम क़बूल किया और सहाबियात में शामिल हुईं।

उनका निकाह बुलन्द मर्तबावाले सहाबी हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) से हुआ था।

सहीह बुख़ारी में है कि नबी (सल्ल०) ने हज़रत अबदुर्रहमान (रज़ि०) पर शादी की निशानियाँ देखीं तो पूछा, "निकाह किया है?"

उन्होंने कहा, "जी हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल!" नबी (सल्ल०) ने पूछा, "किससे?"

हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) ने कहा, "एक अंसारिया से।"

नबी (सल्ल०) ने पूछा, "क्या मह्र है?"

जवाब दिया, "सोने की एक गुठली" (या खजूर की गुठली के बराबर सोना)।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह यह शादी तुम्हारे लिए मुबारक करे, वलीमा करो, चाहे एक बकरी ही सही।"

सीरत-निगार लिखते हैं कि वे सहाबिया जिनसे हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) ने निकाह किया था, हज़रत सहला-बिन्ते-आसिम (रज़ि०) थीं।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत सुबैता-बिन्ते-यआर अंसारिया (रज़ि०)

इनका ताल्लुक़ अंसार के किसी क़बीले से था। इनका निकाह मक्का के रईस उत्बा-बिन-रबीआ के बेटे हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) से हुआ, जिनकी गिनती बुलन्द मर्तबावाले सहाबियों में होती है। मशहूर सहाबी हज़रत अबू-अब्दुल्लाह सालिम (रज़ि०) पहले हज़रत सुबैता (रज़ि०) के ही ग़ुलाम थे, जिसे उन्होंने अल्लाह की राह में आज़ाद कर दिया तो हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) ने उन्हें अपना मुहँ-बोला बेटा बना लिया। जब यह हुक्म नाज़िल हुआ कि लोगों को उनके अस्ल बापों की निस्बत से पुकारों तो लोग उन्हें सालिम-मौला-अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) कहने लगे।

हज़रत सालिम (रज़ि०) की कोई औलाद नहीं थी। यमामा की लड़ाई में अपनी शहादत से पहले उन्होंने वसीयत की थी कि उनकी विरासत के माल का एक तिहाई हिस्सा ग़ुलामों को आज़ाद कराने और दूसरी इस्लामी ज़रूरतों पर ख़र्च किया जाए और एक तिहाई उनके पहले मालिकों को दिया जाए। मुसलमानों के पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू-बक्र

(रज़ि०) ने उनकी वसीयत के मुताबिक़ उनकी विरासत का एक तिहाई हिस्सा हज़रत सबीता (रज़ि०) के पास भेजा तो उन्होंने उसे लेने से इनकार कर दिया और कहा कि मैंने सालिम को किसी बदले की उम्मीद पर नहीं बल्कि सिर्फ़ अल्लाह की रिज़ा की ख़ातिर आज़ाद किया था। इस रिवायत से जहाँ उनकी नेक दिली और दुनिया से बेपरवाई ज़ाहिर होती है वहाँ यह भी पता चलता है कि वे यमामा की लड़ाई तक ज़िन्दा थीं। इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत उम्मे-औस अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-औस अंसारिया (रज़ि०) का ताल्लुक़ अंसार के किसी क़बीले से था। (कुछ सीरत-निगारों ने इनको बेह्ज़ी कबीले से लिखा है) हिजरत के बाद इस्लाम क़बूल किया और सहाबियात में शामिल हुईं। इस्लाम क़बूल करने के बाद उन्होंने एक कुप्पी में घी भरकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में तोहफ़े के तौर पर भेजा। नबी (सल्ल०) ने घी क़बूल कर लिया और उनके लिए बरकत की दुआ की। फिर आप (सल्ल०) ने वह कुप्पी उम्मे-औस (रज़ि०) को वापस भेज दी। वे यह देखकर परेशान हो गईं कि कुप्पी में घी उसी तरह भरा हुआ था। रोती हुई नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने मुझ नाचीज़ का तोहफ़ा क़बूल नहीं किया!" नबी (सल्ल०) ने उन्हें तसल्ली दी और कहा, "मैंने तुम्हारा तोहफ़ा क़बूल कर लिया है, अब इस कुप्पी में जो घी है उसे तुम इस्तेमाल करो।" इस वाक़िए के बाद उम्मे-औस (रज़ि०) सालों उस कुप्पी का घी इस्तेमाल करती रहीं, वह ख़त्म ही नहीं होता था।

कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि हज़रत उम्मे-औस (रज़ि०) हज़रत अली (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने तक ज़िन्दा रहीं और उस कुप्पी का घी इस्तेमाल करती रहीं।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत उम्मे-ख़ल्लाद अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-ख़ल्लाद (रज़ि०) का ताल्लुक़ अंसार के किसी क़बीले से था। इनका निकाह सुवैद-बिन-सअलबा (ख़ज़रजी) से हुआ था। उनके एक बेटे ख़ल्लाद (रज़ि०) थे, जो बड़े नेक दिल सहाबी थे। वे बनू-क़ुरैज़ा की लड़ाई में नबी (सल्ल०) के साथ थे। एक यहूदी औरत ने अपने मकान की छत से उनपर भारी पत्थर गिरा दिया था जिससे वे शहीद हो गए थे।

माँ को उड़ती-उड़ती ख़बर मिली तो वे उनके बारे में मालूम करने के लिए नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं। अचानक आ जानेवाली उस भारी मुसीबत के बावजूद उनका चेहरा ढका हुआ था। नबी (सल्ल०) के पास जो लोग मौजूद थे उनमें से किसी ने कहा, "बीबी, तुम्हारा बेटा क़त्ल हो गया है, ताज्जुब है कि ऐसी मुसीबत के वक़्त भी तुमने अपना चेहरा ढक रखा है।"

उम्मे-ख़ल्लाद (रज़ि०) ने बड़े इत्मीनान से जवाब दिया, "अगर मैंने अपना बेटा खोया है तो क्या अब लाज-शर्म भी खो दूँ?"

मुसनद अबू-दाऊद में है कि इस मौक़े पर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम्हारे बेटे को दोहरा सवाब मिलेगा क्योंकि उसे अहले-किताब ने क़त्ल किया है।"

हज़रत उम्मे-ख़ल्लाद के दूसरे हालात किसी किताब में नहीं मिलते।

हज़रत उम्मे-ख़ैर-बिन्ते-सख़्र (रज़ि०)

नामः सलमा

कुन्नियतः उम्मे-ख़ैर; क़ुरैश के ख़ानदान बनू-तैम से थीं।

नसब का सिलसिला यह है : उम्मे-ख़ैर सलमा-बिन्ते-सख़्र-बिन-आमिर-बिन-काब-बिन-साद-बिन-तैम-बिन-मुर्रा।

इनकी शादी चचेरे भाई अबू-क़ुहाफ़ा (रज़ि०) से हुई। इनकी कोख से इस्लामी मिल्लत की वह अज़ीम हस्ती पैदा हुई जिसे दुनिया हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के नाम से जानती है।

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के इस्लाम क़बूल करने के बाद भी हज़रत उम्मे-ख़ैर (रज़ि०) अपने पुराने मज़हब पर ही क़ायम थीं। उधर उनके बेटे ने अपनी सारी ज़िन्दगी इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए वक़्फ़ कर दी थी। उनका यह अन्दाज़ इस्लाम-दुश्मनों को एक आँख न भाया और वे उनके कट्टर दुश्मन बन गए।

एक दिन हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के साथ काबा तशरीफ़ ले गए और वहाँ मौजूद मुशरिकों को इस्लाम की दावत देने लगे। मुशरिक उनकी बात सुनकर भड़क उठे। उन्होंने नबी (सल्ल०) को तो पीछे धकेल दिया और हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) पर टूट पड़े और इतना मारा कि वे बेहोश हो गए। उसी वक़्त बनू-तैम के कुछ लोग वहाँ पहुँच गए। उन्होंने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) को मुशरिकों के चंगुल से छुड़ाया और घर ले आए। घर पहुँचकर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) को कुछ होश आया तो सबसे पहले उनके मुँह से ये अल्फ़ाज़ निकले, "अल्लाह के रसूल का क्या हाल है?"

घरवाले जो अब तक इस्लाम नहीं लाए थे, उनको बुरा-भला कहने लगे कि इस हालत में भी आपको अपने साथी का ख़याल है और अपनी कुछ परवाह नहीं। लेकिन हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) बार-बार यही पूछते रहे कि "अल्लाह के रसूल का क्या हाल है? मुझे उनकी ख़बर ला दो।"

एक रिवायत के मुताबिक़ नबी (सल्ल०) रात को ख़ुद हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के घर तशरीफ़ लाए। उन्हें इस हाल में देखा तो आँखों में आँसू आ गए और मुहब्बत से उनका माथा चूम लिया। इस मौक़े पर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने बड़ी नर्मी से दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! ये मेरी माँ हैं, इनके लिए दुआ फ़रमाएँ कि अल्लाह

इन्हें इस्लाम की नेमत दे और जहन्नम की आग से बचाए।" नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-ख़ैर (रज़ि०) के लिए दुआ की जिसे अल्लाह ने फ़ौरन क़बूल फ़रमाया और वे मुसलमान हो गईं।

कुछ रिवायतों में है कि रात को हज़रत उम्मे-जमील फ़ातिमा-बिन्ते-ख़त्ताब (रज़ि०) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) का हाल पूछने के लिए आईं। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने उनसे पूछा, "नबी (सल्ल०) इस वक़्त कहाँ हैं?" उन्होंने बताया कि आप (सल्ल०) 'दारे-अरक़म' में हैं। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने उनसे दरख़ास्त की, "मुझे नबी (सल्ल०) के पास ले चलो।"

जब रात गहरी हो गई और हाल पूछनेवाले अपने घरों की तरफ़ चले गए तो हज़रत उम्मे-ख़ैर (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-जमील (रज़ि०) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) को सहारा देकर दारे-अरक़म में नबी (सल्ल०) के पास ले गईं। आप (सल्ल०) ने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के माथे को चूमा और उनके लिए दुआ की। इसी मौक़े पर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से अपनी माँ के लिए दुआ की दरख़ास्त की। नबी (सल्ल०) ने फ़ौरन दुआ के लिए हाथ फैलाए और हज़रत उम्मे-ख़ैर (रज़ि०) ने उसी वक़्त इस्लाम क़बूल कर लिया। यह घटना सन् 4 या 5 नबवी की है, इसी लिए सीरत-निगारों ने हज़रत उम्मे-ख़ैर (रज़ि०) की गिनती इस्लाम के शुरू के ज़माने की सहाबियात में की है।

हज़रत उम्मे-ख़ैर (रज़ि०) ने लम्बी उम्र पाई। इब्ने-असीर के बयान के मुताबिक़ हज़रत अबू-क़ुहाफ़ा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के कुछ दिनों पहले इनका इन्तिक़ाल हुआ। तबरानी ने हैसम-बिन-अदी से रिवायत की है कि सन् 13 हिजरी में जब हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ, उस वक़्त उनके माँ-बाप हज़रत उम्मे-ख़ैर (रज़ि०) और हज़रत अबू-क़ुहाफ़ा (रज़ि०) दोनों ज़िन्दा थे और दोनों ने उनकी विरासत में हिस्सा पाया। अनुमान है कि दोनों का इन्तिक़ाल हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में किसी वक़्त हुआ।

हज़रत सुवैबा (रज़ि०)

हज़रत सुवैबा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के चचा अबू-लहब (इस्लाम का कट्टर दुश्मन) की कनीज़ थीं।

कुछ रिवायतों में है कि हज़रत सुवैबा (रज़ि०) ने अबू-लहब को नबी (सल्ल०) की पैदाइश की ख़ुशख़बरी सुनाई तो उसने उन्हें आज़ाद कर दिया था।

लेकिन कुछ ऐसी रिवायतें भी हैं जिनसे पता चलता है कि अबू-लहब ने हज़रत सुवैबा (रज़ि०) को उस वक़्त आज़ाद किया था जब नबी (सल्ल०) की शादी हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से हो चुकी थी। एक बार हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने हज़रत सुवैबा (रज़ि०) को अबू-लहब से ख़रीदकर आज़ाद करना चाहा तो उसने इनकार कर दिया। बाद में कुछ ख़याल आया तो ख़ुद ही आज़ाद कर दिया।

हज़रत सुवैबा (रज़ि०) को यह बड़ी ख़ुशनसीबी हासिल हुई कि पैदाइश के बाद नबी (सल्ल०) ने कुछ दिनों तक उनका दूध पिया। बुख़ारी और मुस्लिम की रिवायतों में है कि हज़रत अबू-सलमा-बिन-अब्दुल-असद (रज़ि०), जो कि नबी (सल्ल०) के फुफेरे भाई और हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) के पहले शौहर थे, ने भी उनका दूध पिया था।

इब्ने-साद (रह०), इब्ने-कसीर (रह०) और सुहैली (रह०) का बयान है कि नबी (सल्ल०) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) और आप (सल्ल०) के फुफेरे भाई अब्दुल्लाह-बिन-जह्श (रज़ि०) ने भी हज़रत सुवैबा (रज़ि०) का दूध पिया था। इस तरह हज़रत सुवैबा (रज़ि०) को इन तमाम बुलन्द मर्तबा हस्तियों की दूध-पिलाई माँ होने की ख़ुशनसीबी हासिल है।

हिजरत के बाद नबी (सल्ल०) उनके लिए कपड़े और रुपये भेजा करते थे।

हज़रत सुवैबा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 7 हिजरी में हुआ। उनके एक बेटे थे। उनका नाम मसरूह (रज़ि०) था। उनका इन्तिक़ाल हज़रत सुवैबा (रज़ि०) की ज़िन्दगी में ही हो गया था।

हज़रत सुवैबा (रज़ि०) के इस्लाम क़बूल करने के बारे में सभी सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है।

हज़रत सुबैआ ग़ामिदीया (रज़ि०)

हज़रत सुबैआ बनू-ग़ामिदीया क़बीले की एक शरीफ़ ख़ातून थीं। वे इस्लाम क़बूल कर चुकी थीं, लेकिन एक बार वे बदकारी जैसा अपराध कर बैठीं। यह बात किसी को मालूम नहीं थी, वे चाहतीं तो अपनी इस ग़लती को छिपा लेतीं और किसी को पता नहीं चलता। लेकिन वे सच्ची मुसलमान थीं। अपराध की भावना ने उन्हें चैन से बैठने नहीं दिया और एक दिन नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर उन्होंने दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे पाक कर दीजिए, मैंने बदकारी का अपराध किया है।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वापस जा और अल्लाह से अपने गुनाहों की माफ़ी माँग।"

एक और रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने उनसे गवाह माँगे, उन्होंने जवाब दिया, "ऐ अल्लाह के रसूल! उस वक़्त कोई देखनेवाला नहीं था।"

आप (सल्ल०) ने हुक्म दिया, "जा और अल्लाह से अपने गुनाहों की माफ़ी माँग, शायद कि अल्लाह तेरे गुनाह माफ़ कर दे!"

दूसरे दिन वे फिर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं और बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आप मुझे भी उसी तरह फेर देना चाहते हैं जिस तरह आपने माइज़-बिन-मालिक[1] को लौटा दिया था। ख़ुदा की

1. यह एक सहाबी थे। इनसे एक बार बदकारी का गुनाह हो गया था और अपराधबोध से उन्होंने भी नबी (सल्ल०) के सामने अपने गुनाह का इक़रारकर सज़ा पाने का अनुरोध

क़सम, मैं बदकारी के नतीजे में एक बच्चे की माँ बननेवाली हूँ।" आप (सल्ल०) ने हुक्म दिया, "वापस जाओ।" वे चली गईं।

तीसरे दिन फिर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं और बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे इस्लामी क़ानून के मुताबिक़ सज़ा दी जाए ताकि मैं पाक हो जाऊँ।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वापस जाओ और बच्चे के पैदा होने का इन्तिज़ार करो।"

वे चली गईं। जब बच्चा पैदा हुआ तो बच्चे को गोद में लिए हुए नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं और आप (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि मुझे सज़ा दी जाए।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बच्चे को दूध पिलाओ, जब बच्चा दूध छोड़ दे तब आना।"

जब बच्चे के दूध पीने का ज़माना गुज़र गया तो फिर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। अब आप (सल्ल०) ने अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ 'संगसार' (पत्थरों से मार-मारकर हलाक करना) का हुक्म दिया।

एक दूसरी रिवायत में है कि जब हज़रत सुबैआ (रज़ि०) अपने दूध-पीते बच्चे को लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अभी हम इसे कोई सज़ा नहीं देंगे और इसे उस वक़्त तक छोड़े रखेंगे जब तक कि किसी दूध पिलानेवाली का इन्तिज़ाम न हो जाए।"

यह सुनकर एक अंसारी सहाबी खड़े हो गए और बोले, "ऐ अल्लाह के रसूल! इस बच्चे को दूध पिलाने की ज़िम्मेदारी मैं लेता हूँ।" इसपर

किया था। बार-बार आग्रह करने पर आख़िरकार नबी (सल्ल०) के आदेश से उन्हें संगसार कर दिया गया था।

नबी (सल्ल०) ने सुबैआ (रज़ि०) पर पत्थर बरसाने शुरू किए। हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने एक पत्थर फेंका जो हज़रत सुबैआ (रज़ि०) के सिर पर पड़ा और ख़ून की छींटे उड़कर हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) के चेहरे पर आ पड़ीं। उनके मुँह से हज़रत सुबैआ (रज़ि०) के लिए सख़्त बात निकल गई।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ख़ालिद, ज़बान को रोको! ख़ुदा की क़सम, इस औरत ने ऐसी तौबा की है कि ज़ुल्म से लगान वुसूल करनेवाला भी ऐसी तौबा करे तो माफ़ कर दिया जाए।"

इसके बाद आप (सल्ल०) ने सुबैआ (रज़ि०) के जनाज़े की नमाज़ पढ़ी। एक रिवायत में है कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने इस मौक़े पर नबी (सल्ल०) से पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने एक ऐसी औरत के जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जिसने बदकारी जैसा हराम काम किया था?" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह की राह में अपनी जान क़ुरबान कर देने से बढ़कर उसने कुछ और न पाया। यानी सिर्फ़ अल्लाह के डर से अपने बड़े गुनाह का इक़रार किया और अपनी जान क़ुरबान कर दी।"

हज़रत सीरीन क़िब्तीया (रज़ि०)

सन् 6 हिजरी में हुदैबिया की सुलह (संधि) के बाद नबी (सल्ल०) ने हज़रत हातिब-बिन-अबू-बलतआ (रज़ि०) को मिस्र के हाकिम मक़ूक़स के पास इस्लाम का पैग़ाम देकर भेजा। मक़ूक़स ने इस्लाम तो नहीं क़बूल किया लेकिन उसने हातिब (रज़ि०) का बहुत आदर-सत्कार किया। जब वे मिस्र से चलने लगे तो बहुत-से तोहफ़े और हदिया उनके साथ कर दिए। उनमें दो बहनें मारिया (रज़ि०) और सीरीन (रज़ि०) भी थीं। इन दोनों ने हज़रत हातिब (रज़ि०) की दावत पर इस्लाम क़बूल कर लिया।

हज़रत मारिया (रज़ि०) तो नबी (सल्ल०) के हरम (ज़नानख़ाने) में दाख़िल हुईं और हज़रत सीरीन (रज़ि०) का निकाह हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि०) से हुआ। इनकी कोख से हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-हस्सान (रज़ि०) पैदा हुए।

अल्लामा ज़रक़ानी (रह०) ने लिखा है कि मिस्र के क़िब्ती आमतौर पर ईसाई थे। चूँकि हज़रत मारिया (रज़ि०) और हज़रत सीरीन (रज़ि०) क़िब्तीया थीं, इसलिए सीरत-निगारों ने उन्हें अहले-किताब सहाबियात में रखा है।

इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि जब नबी (सल्ल०) के बेटे इबराहीम का इन्तिक़ाल हुआ तो बच्चे की माँ हज़रत मारिया (रज़ि०) बहुत दुखी हुईं और ग़म से रोने लगीं। हज़रत सीरीन (रज़ि०) को भी अपने भाँजे की मौत से बहुत सदमा पहुँचा लेकिन उन्होंने अपने आपपर क़ाबू रखा और अपनी बहन हज़रत मारिया (रज़ि०) को सब्र की नसीहत करती रहीं।

हज़रत तमीमा-बिन्ते-वहूब (रज़ि०)

कुछ रिवायतों में इनका नाम आइशा, सहमीया, उमैमा, रुमैसा और ग़ुमैज़ा भी आया है। यहूदियों के ख़ानदान बनू-क़ुरैज़ा से थीं। इनका पहला निकाह अपने ही ख़ानदान के एक साहब हज़रत रिफ़ाआ-बिन-क़ुरज़ा क़ुरज़ी (रज़ि०) से हुआ था, लेकिन उनसे निभ न सकी और उन्होंने तलाक़ दे दी। इसके बाद उनका निकाह हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) से हुआ। लेकिन कुछ मुद्दत के बाद वे उनसे भी अलग होना चाहती थीं, क्योंकि उनका इरादा था कि वे दोबारा रिफ़ाआ से निकाह कर लें, इसलिए नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर बोलीं कि अब्दुर्रहमान तो कपड़े की बत्ती की तरह है।

नबी (सल्ल०) उनकी बात सुनकर मुस्कुराए और फ़रमाया, "क्या तू फिर रिफ़ाआ की तरफ़ जाने का इरादा रखती है? लेकिन जो बात तू कह रही है उसकी वजह से मैं इसकी इजाज़त नहीं दूँगा।"

नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद उन्होंने अबू-बक्र (रज़ि०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर यही दरख़ास्त की। लेकिन उन्होंने भी इजाज़त नहीं दी। हज़रत उमर (रज़ि०) ख़लीफ़ा हुए तो उनसे भी इजाज़त चाही लेकिन उन्होंने भी सख़्ती से मना कर दिया। इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत बिन्ते-अम्र-बिन-वह्ब (रज़ि०)

नबी (सल्ल०) के एक जाँनिसार सहाबी हज़रत साद असवद सह्मी (रज़ि०) को अल्लाह ने साधारण सूरत दी थी, इसलिए कोई शख़्स उनको अपनी लड़की का रिश्ता नहीं देना चाहता था। उन्होंने नबी (सल्ल०) से अपनी मुश्किल बयान की तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम इसी वक़्त अम्र-बिन-वह्ब सक़फ़ी के घर जाओ और सलाम के बाद उनसे कहो कि अल्लाह के रसूल ने आपकी बेटी का रिश्ता मेरे साथ कर दिया है।"

हज़रत साद (रज़ि०) ने हज़रत अम्र-बिन-वह्ब (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) का पैग़ाम सुनाया तो वे ज़ाद (रज़ि०) की बात पर यक़ीन न कर सके और उन्होंने रिश्ता देने से इनकार कर दिया। उनकी बेटी ने बाप की बातचीत सुनी तो लपककर दरवाज़े पर आईं और हज़रत साद (रज़ि०) से बोलीं।

"ऐ अल्लाह के बन्दे! अगर अल्लाह के रसूल ने सचमुच तुम्हें भेजा है तो मैं तुम्हारे साथ शादी के लिए तैयार हूँ।"

हज़रत साद (रज़ि०) ने वापस जाकर यह बात नबी (सल्ल०) को बताई तो आप (सल्ल०) ने लड़की को ख़ैर की दुआ दी। उधर लड़की

ने अपने बाप को भी अल्लाह के ग़ज़ब से डराया और वे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में अपनी ग़लती की माफ़ी माँगने के लिए हाज़िर हुए। नबी (सल्ल०) ने बिन्ते-अम्र (रज़ि०) का निकाह हज़रत साद (रज़ि०) से कर दिया। लेकिन वे अभी बीवी को रुख़सत करके घर भी नहीं लाए थे कि एक लड़ाई में शहीद हो गए। नबी (सल्ल०) ने उनकी विरासत में से बिन्ते-अम्र-बिन-वह्ब (रज़ि०) को भी हिस्सा दिलाया।

इनके बस इतने ही हालात मालूम हैं।

हज़रत उम्मे-हरमला-बिन्ते-अब्दुल-असवद (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-हरमला-बिन्ते-अब्दुल-असवद (रज़ि०) बनू-ख़ुज़ाआ से ताल्लुक़ रखती थीं। उनकी शादी जह्म-बिन-क़ैस (रज़ि०) से हुई जो बनू-अब्दुद्दार-बिन-क़ुसई में से थे। दोनों मियाँ-बीवी बड़े भले और नेक थे। इस्लाम के शुरू के ज़माने में ही ईमान लाए थे। सन् 6 नबवी में अपने दो बेटों अम्र-बिन-जह्म (रज़ि०) और ख़ुज़ैमा-बिन-जह्म (रज़ि०) को साथ लेकर हबशा की तरफ़ हिजरत करनेवाले दूसरे क़ाफ़िले में शामिल हो गए।

हज़रत उम्मे-हरमला (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हबशा में ही हो गया और वहीं उनकी आख़िरी आरामगाह बनी।

कुछ रियावतों में उनका नाम हुरैमला भी आया है और ख़ुज़ैमा (रज़ि०) को उनकी बेटी बताया गया है।

हज़रत बरका-बिन्ते-यसार (रज़ि०)

इनका हसब व नसब मालूम नहीं है। सिर्फ़ इतना मालूम है कि वे अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) की कनीज़ थीं, जिन्हें उन्होंने आज़ाद कर दिया था। वे इस्लाम के शुरू के ज़माने में ही ईमान ले आई थीं। इनका निकाह हज़रत क़ैस-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) से हुआ, जिनका ताल्लुक़

बनू-असद-बिन-ख़ुज़ैमा क़बीले से था। उन्होंने भी बिलकुल शुरू के ज़माने में इस्लाम क़बूल किया था।

हबशा की दूसरी हिजरत के मौक़े पर दोनों मियाँ-बीवी हबशा चले गए और ख़ैबर की लड़ाई के वक़्त मदीना आए। इब्ने-असीर (रह०) ने लिखा है कि उनकी लड़की आमिना उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-हबीबा-बिन्ते-अबू-सुफ़ियान की ख़ादिमा थीं और हज़रत क़ैस (रज़ि०) इनके पहले शौहर उबैदुल्लाह-बिन-जह्श के ख़िदमतगार थे। उबैदुल्लाह हबशा जाकर ईसाई हो गए थे लेकिन क़ैस (रज़ि०) और बरका (रज़ि०) इस्लाम पर क़ायम रहे।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत फ़ुकैहा-बिन्ते-यसार (रज़ि०)

हज़रत फ़ुकैहा (रज़ि०) सहाबियात में शामिल हैं। तमाम सीरत-निगार इस बात पर एक मत हैं कि हजरत फ़ुकैहा-बिन्ते-यसार ने नुबूवत के शुरू के तीन सालों में इस्लाम क़बूल किया। इनका निकाह हज़रत ख़त्ताब-बिन-हारिस जमही (रज़ि०) से हुआ जो उन्हीं की तरह 'साबिक़ूनल-अव्वलून' यानी शुरू के दौर में ईमान लानेवालों में से थे। जब मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने मुसलमानों पर ज़ुल्म व सितम के पहाड़ तोड़ डाले तो दोनों मियाँ-बीवी सन् 6 नबवी में हबशा के मुहाजिरों के दूसरे क़ाफ़िले में शामिल हो गए और हबशा को अपना दूसरा वतन बना लिया।

एक रिवायत के मुताबिक़ हज़रत ख़त्ताब-बिन-हारिस (रज़ि०) का हबशा में इन्तिक़ाल हो गया। हज़रत फ़ुकैहा (रज़ि०) बेवा हो गईं और इसी हाल में ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर दूसरे मुसलमानों के साथ मदीना वापस आईं।

लेकिन एक और रिवायत में है कि हज़रत ख़त्ताब (रज़ि०) अपनी बीवी के साथ भले-चंगे मदीना वापस आए और उनका इन्तिक़ाल हज़रत

उमर (रज़ि०) के ज़माने में हुआ। कुछ रिवायतों में इनका नाम ख़त्ताब-बिन-हारिस भी आया है।

हज़रत फ़ुकैहा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत असमा-बिन्ते-सलामा (रज़ि०)

हज़रत असमा-बिन्ते-सलामा (रज़ि०) का ताल्लुक़ बनू-तमीम क़बीले से था। इस्लाम के बिलकुल शुरू के दौर में ईमान ले आईं। इनका निकाह हज़रत अय्याश-बिन-अबू-रबीआ मख़ज़ूमी (रज़ि०) से हुआ। वे अबू-जह्ल जैसे इस्लाम के कट्टर दुश्मन के सगे भाई थे। लेकिन अल्लाह ने उनकी फ़ितरत में नेकी और भलाई रखी थी। इसलिए नुबूवत के बाद बिलकुल शुरू के ज़माने में उस वक़्त इस्लाम ले आए जब नबी (सल्ल०) अरक़म-बिन-अबू-अरक़म के घर तशरीफ़ नहीं लाए थे।

अबू-जह्ल और उसके साथियों ने हज़रत अय्याश (रज़ि०) और हज़रत असमा (रज़ि०) का इस्लाम लाने के जुर्म में जीना दूभर कर दिया तो दोनों मियाँ-बीवी सन् 6 नबवी में मक्का से हिजरत करके हबशा चले गए। यहाँ इनके एक बेटे अब्दुल्लाह पैदा हुए। नबी (सल्ल०) की मदीना हिजरत से कुछ दिनों पहले हज़रत असमा (रज़ि०) अपने शौहर और बच्चे के साथ मक्का वापस आ गईं। हज़रत अय्याश (रज़ि०) ने कुछ मुद्दत के बाद हज़रत उमर (रज़ि०) के साथ मदीना की हिजरत का सौभाग्य प्राप्त किया। अनुमान यह है कि हज़रत असमा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद मदीना हिजरत की और सारा ख़ानदान मदीना में इकट्ठा हो गया। हज़रत अय्याश (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत असमा (रज़ि०) का निकाह हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) से हुआ।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत यक़ज़ा-बिन्ते-अ़लक़मा (रज़ि०)

कुछ रिवायतों में इनका नाम फ़ातिमा-बिन्ते-अ़लक़मा (रज़ि०) और कुछ में उम्मे-यक़ज़ा (रज़ि०) आया है।

ये साबिक़ूनल-अव्वलून यानी नुबूवत के बिलकुल शुरू के ज़माने में इस्लाम क़बूल करनेवाले गरोह से ताल्लुक़ रखती हैं। इनके शौहर हज़रत सलीत-बिन-अम्र (रज़ि०) भी उसी ख़ुशनसीब गरोह से ताल्लुक़ रखते थे। वे बनू-आमिर लुए से थे। सन् 6 नबवी में हबशा की तरफ़ होनेवाली दूसरी हिजरत में दोनों मियाँ-बीवी अल्लाह की राह में घर छोड़कर हबशा में जा बसे।

क़रीब तेरह साल परदेस में ज़िन्दगी गुज़ारने के बाद ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर मदीना पहुँचे। उनकी औलाद में सिर्फ़ एक लड़के हज़रत सलीत (रज़ि०) का नाम मिलता है।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-हबीबा-बिन्ते-जह्श (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-हबीबा-बिन्ते-जह्श नबी (सल्ल०) की फूफी उमैमा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब (रज़ि०) की बेटी थीं। वे उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जह्श (रज़ि०), हज़रत हम्ना-बिन्ते-जहश (रज़ि०) और उहुद के शहीद हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जह्श (रज़ि०) की सगी बहन थीं।

अपने बहन-भाइयों की तरह वे भी इस्लाम के बिलकुल शुरू के ज़माने में ईमान ले आईं और हक़ की राह में हर तरह की मुसीबतें झेलती रहीं, यहाँ तक कि मदीना की हिजरत का हुक्म आ गया और नबी (सल्ल०) की हिजरत से कुछ दिनों पहले उन्होंने मक्का को अलविदा कहा और मदीना में जा बसीं। हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) का निकाह मशहूर सहाबी अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) से हुआ।

सहीह मुस्लिम की एक रिवायत से मालूम होता है कि उन्हें अपनी बहन हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जह्श (रज़ि०) से बहुत मुहब्बत थी, वे दिन में कई बार उनके घर आया करती थीं।

कुछ रिवायतों में उम्मे-हबीबा (रज़ि०) की कुन्नियत उम्मे-हबीब लिखी है।

इससे ज़्यादा हालात किसी किताब में नहीं मिलते।

हज़रत अरवा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब (रज़ि०)

हज़रत अरवा (रज़ि०) के हसब व नसब के बारे में इतना ही कहना बहुत है कि वे नबी (सल्ल०) की फूफी थीं। उनके इस्लाम क़बूल करने के बारे में अल्लामा इब्ने-साद (रह०), इब्ने-क़य्यिम (रह०) और बहुत-से दूसरे सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है।

हज़रत अरवा (रज़ि०) का निकाह उमैर-बिन-वह्ब-बिन-अब्द-बिन-क़ुसय्य से हुआ। उनसे उनके बेटे तुलैब (रज़ि०) पैदा हुए। जब नबी (सल्ल०) ने इस्लाम की दावत देनी शुरू की तो जिन पाक हस्तियों ने इस दावत को हालात और नतीजे की परवाह किए बिना आगे बढ़कर क़बूल कर लिया, उनमें तुलैब (रज़ि०) भी शामिल थे। नबी (सल्ल०) को उस ज़माने में हज़रत अरक़म-बिन-अबू-अरक़म (रज़ि०) के घर तशरीफ़ लाए हुए कुछ ही दिन गुज़रे थे। हज़रत तुलैब (रज़ि०) दारे-अरक़म से मुसलमान होकर घर आए और माँ से कहा—

"अम्मा-जान! मैं अपने ममेरे भाई मुहम्मद (सल्ल०) पर सच्चे दिल से इमान ले आया हूँ, वे अल्लाह के सच्चे रसूल हैं।"

हज़रत अरवा (रज़ि०) ने अभी इस्लाम क़बूल नहीं किया था लेकिन बड़ी हमदर्दी और दर्दमन्दी के साथ अपने बेटे से कहा, "बेटे, तुम्हारा भाई आज मुख़ालिफ़तों के तूफ़ान में घिरा हुआ है, बेकस और मज़लूम

है, वह सचमुच तुम्हारी मदद का हक़दार है। ऐ काश! मुझमें मर्दों जैसी ताक़त होती तो मैं अपने यतीम भतीजे को दुश्मनों से बचाती।"

तुलैब (रज़ि०) ने कहा, "अम्मा, फिर आप इस्लाम क्यों नहीं क़बूल कर लेतीं?"

हज़रत अरवा (रज़ि०) ने कहा, "मुझे दूसरी बहनों का इन्तिज़ार है।" हज़रत तुलैब (रज़ि०) ने कहा, "अम्मा, अब इन्तिज़ार का वक़्त नहीं, ख़ुदा के लिए मेरे साथ भाई के पास चलें और ईमान की दौलत हासिल कर लें।"

हज़रत अरवा (रज़ि०) अब और इनकार न कर सकीं। उसी वक़्त अपने नेक और समझदार बेटे के साथ हज़रत अरक़म (रज़ि०) के घर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में पहुँची और इस्लाम क़बूल कर लिया। उस वक़्त तक नबी (सल्ल०) को नुबूवत मिले ढाई साल से ज़्यादा वक़्त गुज़र चुका था।

कुछ सीरत-निगारों का बयान है कि हज़रत तुलैब (रज़ि०) और हज़रत अरवा (रज़ि०) हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के इस्लाम क़बूल करने के बाद ईमान लाए और तुलैब (रज़ि०) ने माँ को इस्लाम की दावत देते हुए हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के इस्लाम क़बूल करने का हवाला भी दिया। लेकिन यह रिवायत सही नहीं है क्योंकि हज़रत हमज़ा (रज़ि०) हबशा की तरफ़ होनेवाली दूसरी हिजरत के बाद मुसलमान हुए। उस वक़्त हज़रत तुलैब (रज़ि०) हिजरत करके हबशा जा चुके थे।

हज़रत तुलैब (रज़ि०) और हज़रत अरवा (रज़ि०) इस्लाम क़बूल करने से पहले भी नबी (सल्ल०) की भलाई करनेवालों में से थे। हज़रत अरवा (रज़ि०) अपने बेटे को हमेशा नबी (सल्ल०) की मदद करने की ताकीद करती थीं। तुलैब (रज़ि०) वैसे भी नबी (सल्ल०) के जाँनिसार थे, माँ की बातों से उनका हौसला और भी बुलन्द हो गया था और वे हमेशा नबी (सल्ल०) की हिफ़ाज़त और मदद के लिए तैयार रहते थे।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) का बयान है कि एक बार औफ़-बिन-सबरा सह्मी ने हज़रत तुलैब (रज़ि०) के सामने नबी (सल्ल०) की शान में कुछ अपशब्द कहे। हज़रत तुलैब (रज़ि०) ग़ुस्से से बेताब हो गए और उसे ऊँट के कल्ले की हड्डी मारकर लहूलुहान कर दिया।

औफ़ ने हज़रत अरवा (रज़ि०) से शिकायत की तो उन्होंने फ़ौरन यह शेर पढ़ा--

> "तुलैब ने अपने मामू के बेटे की मदद की, और उसके ख़ून और उसके माल के नुक़्सान में उसके ग़म में शरीक हुआ।"

हज़रत अरवा (रज़ि०) का भाई अबू-लहब इस्लाम का कट्टर दुश्मन था। एक बार उसने कुछ मुसलमानों को इस्लाम क़बूल करने के जुर्म में क़ैद कर लिया, तो हज़रत तुलैब (रज़ि०) को बहुत ग़ुस्सा आया और उन्होंने अपने मामू को ख़ूब पीटा। अपने सरदार को पिटते देख बहुत-से मुशरिक हज़रत तुलैब (रज़ि०) से चिमट गए और अबू-लहब को छुड़ाकर तुलैब (रज़ि०) को बाँध दिया। चूँकि इज़्ज़तदार ख़ानदान से ताल्लुक़ रखते थे इसलिए कुछ देर बाद छोड़ दिया। अबू-लहब ने अपनी बहन से उनकी शिकायत की। हज़रत अरवा (रज़ि०) ने जवाब दिया, "तुलैब की ज़िन्दगी का सबसे अच्छा वक़्त वही है, जब वह मुहम्मद (सल्ल०) की मदद करे।"

एक बार हज़रत तुलैब (रज़ि०) को पता चला कि अबू-इहाब-बिन-अज़ीज़ दारमी ने नबी (सल्ल०) को शहीद करने की योजना बनाई है। उन्होंने चुपके से जाकर उसे क़त्ल कर डाला। हज़रत अरवा (रज़ि०) को पता चला तो उन्होंने ख़ुशी ज़ाहिर की।

सन् 6 नबवी के शुरू में नबी (सल्ल०) के हुक्म पर हज़रत तुलैब (रज़ि०) हिजरत करके हबशा चले गए। वहाँ सात साल गुज़ारकर नबी

(सल्ल०) के मदीना हिजरत करने से कुछ दिनों पहले मक्का वापस आए। हज़रत अरवा (रज़ि०) ने अपने प्यारे बेटे से जुदाई की यह लम्बी मुद्दत बड़े सब्र और हौसले से गुज़ारी।

हज़रत अरवा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं। लेकिन एक रिवायत से पता चलता है कि वे नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के वक़्त ज़िन्दा थीं और आप (सल्ल०) के इन्तिक़ाल पर उन्होंने कुछ दर्द-भरे अशआर कहे थे। कुछ सीरत-निगारों ने लिखा है कि हज़रत अरवा (रज़ि०) शायरी में भी महारत रखती थीं।

हज़रत उम्मे-अब्द (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-अब्द (रज़ि०) का असली नाम मालूम नहीं है। कुछ रिवायतों में उनके बाप का नाम अब्दे-वुद्द आया है। वे बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) की माँ थीं। उनका निकाह मसऊद-बिन-ग़ाफ़िल हज़ली से हुआ था। इनसे ही हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) पैदा हुए। वे इस्लाम के शुरू के ज़माने में ही ईमान ले आई थीं। उन्हें हिजरत करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

नबी (सल्ल०) को इनसे बहुत लगाव था और आप (सल्ल०) अक्सर उनके बेटे अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) को 'इब्ने-उम्मे-अब्द (उम्मे-अब्द के बेटे) कहकर बुलाते थे।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) कभी-कभी अपनी माँ को नबी (सल्ल०) के घर भेजा करते थे ताकि वे नबी (सल्ल०) की घरेलू ज़िन्दगी के बारे में मालूमात हासिल करें।

हज़रत उम्मे-अब्द (रज़ि०) की ज़िन्दगी के और हालात नहीं मिलते।

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मुआविया (रज़ि०)

नाम ज़ैनब था और राइता लक़ब। उनका ताल्लुक़ बनू-सक़ीफ़ नामी क़बीले से था।

नसब-नामा यह है : ज़ैनब-बिन्ते-मुआविया-बिन-अत्ताब-बिन-असअद-बिन-ग़ाज़िरा-बिन-हुतैत-बिन-जशम-बिन-सक़ीफ़।

ये मशहूर सहाबी और फ़क़ीह (इस्लामी धर्म-शास्त्र के विद्वान) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) की बीवी थीं। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) का कोई रोज़गार नहीं था और वे बहुत ग़रीब थे। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) दस्तकार थीं। जो कुछ कमाती थीं अपने शौहर और उनकी औलाद पर ख़र्च कर देती थीं। इस तरह दूसरे ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों को देने के लिए उनके पास कुछ नहीं बचता था। नबी (सल्ल०) से सदक़ा का सवाब सुनकर उनके दिल में यह तमन्ना जागती कि काश मेरे पास भी कुछ पैसे ख़ैरात के लिए बच जाते। एक दिन उन्होंने हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से कहा, "मैं जो कुछ दस्तकारी से कमाती हूँ, उसे आपपर और आपकी औलाद की ज़रूरतों पर ख़र्च करती हूँ, इस तरह मैं सदक़ा व ख़ैरात का सवाब नहीं हासिल कर पाती हूँ, आप ही बताएँ इसमें मेरा क्या फ़ायदा है?"

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) ने फ़रमाया, "जिस काम में तुम्हारा नफ़ा हो वह करो, मैं तुम्हें आख़िरत की भलाई से महरूम नहीं रखना चाहता।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे माँ-बाप आपपर क़ुर्बान! मैं एक दस्तकार औरत हूँ, जो कुछ कमाती हूँ, शौहर और औलाद पर ख़र्च कर देती हूँ, क्योंकि मेरे शौहर का कोई रोज़गार नहीं है। इसलिए मैं ग़रीबों

को सदक़ा नहीं दे सकती। ऐसी हालत में मुझे कुछ सवाब मिलता है या नहीं?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ, तुम्हें उनकी परवरिश करनी चाहिए।"

एक और रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने औरतों को सदक़ा व ख़ैरात करने की नसीहत की। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से कहा, "आप बहुत ज़रूरतमन्द हैं, नबी (सल्ल०) के पास जाएँ और अगर नबी (सल्ल०) इजाज़त दें तो मैं जो सदक़ा करना चाहती हूँ आप ही पर करूँ।"

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने फ़रमाया, "तुम ही जाओ।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के घर पहुँची तो दरवाज़े पर अंसार की एक ख़ातून को खड़ा देखा। वे भी यही मसला पूछने आई थीं। इतने में अन्दर से हज़रत बिलाल (रज़ि०) आए। दोनों औरतों ने उनसे दरख़ास्त की कि आप नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हमारे हाज़िर होने की ख़बर दें कि दो औरतें दरवाज़े पर खड़ी हैं और पूछती हैं कि वे अपने शौहरों और उनकी निगरानी में परवरिश पानेवाले यतीमों पर सदक़ा कर सकती हैं या नहीं?

हज़रत बिलाल (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में उनका सवाल पेश किया तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वे दोनों कौन हैं?"

उन्होंने कहा, "एक औरत अंसार की है और दूसरी ज़ैनब।"

नबी (सल्ल०) ने पूछा, "कौन-सी ज़ैनब?"

कहा, "अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद की बीवी।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उनको दो गुना सवाब मिलेगा, एक रिश्तेदारी का, दूसरा सदक़े का।"

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) जब घर आते तो बाहर ही से खँकारते और बुलन्द आवाज़ में कुछ बोलते ताकि घरवालों को उनके

आने की ख़बर हो जाए। मुसनद अबू-दाऊद में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से रिवायत है कि एक बार अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) खँकारते हुए अन्दर आए। उस वक़्त एक बूढ़ी औरत मुझे तावीज़ पहना रही थी। मैंने उनके डर से उस औरत को पलंग के नीचे छिपा दिया। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) मेरे पास ही बैठ गए और मेरे गले की तरफ़ देखकर पूछा, "यह धागा कैसा है?"

मैंने कहा, "यह धागा मुझे फूँककर दिया गया है।" यह सुनते ही उन्होंने वह धागा मेरे गले से तोड़कर फेंक दिया और फ़रमाया, "तुम अब्दुल्लाह के ख़ानदान से हो, तुम्हें शिर्क से दूर रहना चाहिए। मैंने नबी (सल्ल०) को यह फ़रमाते सुना है कि झाड़-फूँक, तावीज़, गंडे ये सब मुशरिकों के पसंदीदा काम हैं।"

मैंने कहा, "मेरी आँख में चुभन महसूस होती थी इसलिए मैं एक यहूदी के पास झाड़-फूँक के लिए जाया करती थी, उसके झाड़-फूँक से मुझे आराम हो जाता था।" हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) बोले, "ये शैतानी काम है, वही अपने हाथ से चुभन पैदा करता था और जब झाड़-फूँक करली जाती तो हाथ रोक लेता था। इसलिए तुम्हें बस इतना ही कहना काफ़ी था, जिस तरह नबी (सल्ल०) फ़रमाते थे –

अज़हिबिल-बअ्-स रब्बन-नासि वशफ़ि अन-तश-शाफ़ी ला शिफ़ा-अ इल्ला शिफ़ाउ-क शिफ़ा-अन ला युग़ादिरु सुक़मा।

"ऐ सारे जहान के परवरदिगार! तकलीफ़ को दूर फ़रमा दे और तेरी शिफ़ा ही अस्ल शिफ़ा है। शिफ़ा दे, क्योंकि तू ही शिफ़ा देनेवाला है। ऐसी शिफ़ा दे कि जिसके बाद किसी तरह की तकलीफ़ बाक़ी न रहे।"

यह रिवायत इब्ने-माजा (रह०), इब्ने-हिब्बान (रह०) और हाकिम (रह०) ने भी बयान की है और इमाम ज़हबी ने इसको सही क़रार दिया

है। लेकिन कुछ दूसरे आलिम दूसरी रिवायतों को देखते हुए उस तरह के झाड़-फूँक और तावीज़ को जाइज़ समझते हैं जिसमें शिर्क के कलिमात (शब्द) इस्तेमाल न किए जाएँ।

मुसनद अहमद में है कि हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मुआविया (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बड़ी मुहब्बत और अक़ीदत थी। वे अक्सर नबी (सल्ल०) के घर भी जाया करती थीं। नबी (सल्ल०) भी उनसे बहुत लगाव रखते थे और कभी-कभी उन्हें अपना सिर देखने की इजाज़त दे देते थे। वे एक दिन नबी (सल्ल०) के सिर की जुएँ देख रही थीं। उस वक़्त मुहाजिरों की कुछ औरतें भी वहाँ मौजूद थीं। किसी मसले पर बहस छिड़ गई। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) अपना काम छोड़कर बोलने लगीं तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"तुम आँख से नहीं बोलती हो, काम भी करो और बातें भी।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं।

मशहूर मुहद्दिस (हदीस का इल्म रखनेवाले) हज़रत अबू-उबैदा (रह०) उनके बेटे थे।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने कुछ हदीसें नबी (सल्ल०), हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) से रिवायत की हैं।

हज़रत जुमाना-बिन्ते-अबू-तालिब (रज़ि०)

हज़रत जुमाना (रज़ि०), अबू-तालिब-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी और हज़रत अली (रज़ि०) की बहन थीं। इस तरह नबी (सल्ल०) उनके चचेरे भाई थे।

क़ाज़ी मुहम्मद सुलैमान सलमान मंसूरपुरी (रह०) ने "रहमतुल-लिल-आलमीन", भाग-2 में बयान किया है कि अबू-तालिब की औलाद में जुमाना (रज़ि०) का नाम तो मिलता है मगर उनके हालात के बारे में कोई जानकारी हासिल नहीं होती।

इब्ने-इसहाक़ (रह०) ने लिखा है कि नबी (सल्ल०) ने ख़ैबर की पैदावार में से तीस वसक़ (नापने का पैमाना) खजूर जुमाना-बिन्ते-अबू-तालिब (रज़ि०) के लिए मुक़र्रर किए थे। इससे यह पता चलता है कि उन्हें इस्लाम क़बूल करने का सौभाग्य प्राप्त था, और यह भी मालूम होता है कि वे ख़ैबर की जीत तक ज़िन्दा थीं।

हज़रत उम्मे-हानी-बिन्ते-अबू-तालिब (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) का नाम सीरत-निगारों ने फ़ाख़ता या फ़ातिमा या हिन्द बताया है। सीरत-निगारों का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि कुन्नियत उम्मे-हानी थी।

वे नबी (सल्ल०) के चचा अबू-तालिब की बेटी थीं। माँ का नाम फ़ातिमा-बिन्ते-असद (रज़ि०) था। हज़रत जाफ़र (रज़ि०), तालिब, हज़रत अक़ील (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) उनके सगे भाई थे। उम्मे-हानी (रज़ि०) का निकाह हुबैरा-बिन-अबू-वह्ब-बिन-अम्र-बिन-आइज़-बिन-इमरान-बिन-मख़ज़ूम मख़ज़ूमी से हुआ। हुबैरा-बिन-वह्ब मक्का की जीत के वक़्त शिर्क की हालत में नजरान की तरफ़ भाग गया। नजरान से उसकी वापसी और इस्लाम क़बूल करने के बारे में कोई रिवायत नहीं मिलती।

हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल कर लिया था, इसपर सभी सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है, लेकिन इसके ज़माने के बारे में रिवायतों में इख़्तिलाफ़ है। कुछ सीरत-निगारों का बयान है कि उन्होंने मक्का की जीत के मौक़े पर इस्लाम क़बूल किया और कुछ का ख़याल

है कि वे बहुत पहले इस्लाम क़बूल कर चुकी थीं, लेकिन उसे छिपा रखा था।

मक्का की जीत के वक़्त हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) से मुताल्लिक़ जो रिवायतें मिलती हैं, उनसे पता चलता है कि वे बहुत पहले ईमान ला चुकी थीं। उन्हें नबी (सल्ल०) से बहुत अक़ीदत और मुहब्बत थी। नबी (सल्ल०) को भी उनका बहुत ख़याल रहता था। चुनाँचे मक्का-विजय के मौक़े पर जिन मुशरिकों को हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) ने अपने घर में पनाह दी, नबी (सल्ल०) ने भी उनको पनाह दे दी। फिर आप (सल्ल०) हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए और वहाँ नमाज़ पढ़ी।

मुसनद अहमद में है कि मक्का की जीत के मौक़े पर हारिस-बिन-हिशाम मख़ज़ूमी और ज़ुहैर-बिन-उमैया मख़ज़ूमी (या अब्दुल्लाह-बिन-अबू-रबीआ) ने हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) के घर में पनाह ली। हज़रत अली (रज़ि०) को पता चला तो वे तलवार खींचकर अपनी बहन के घर पहुँचे और यह कहकर उन दोनों मख़ज़ूमियों को क़त्ल करना चाहा कि इनका क़त्ल वाजिब क़रार पा चुका है।

हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) ने कहा कि इन्होंने मेरे यहाँ पनाह ली है, मैं इन्हें क़त्ल नहीं होने दूँगी और फिर उन्होंने अपना दरवाज़ा बन्द कर लिया। इसके बाद वे दोनों मख़ज़ूमियों को लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) को देखकर ख़ुशी ज़ाहिर की और उनका स्वागत करते हुए पूछा, "उम्मे-हानी, कैसे आना हुआ?"

हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने इन दोनों को पनाह दी है और अली इनको क़त्ल करना चाहते हैं।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिसको तूने पनाह दी, उसको मैंने पनाह दी।"

इस वाक़िए के बाद हारिस-बिन-हिशाम और ज़ुहैर-बिन-उमैया दोनों सच्चे दिल से मुसलमान हो गए।

सहीह बुख़ारी और मुस्लिम में ख़ुद उम्मे-हानी (रज़ि०) से रिवायत है कि जिस दिन मक्का पर जीत हासिल हुई, नबी (सल्ल०) मेरे घर तशरीफ़ लाए और वहाँ ग़ुस्ल फ़रमाया, फिर आठ रकअतें नमाज़ पढ़ीं। मैंने कोई नमाज़ इससे हल्की और छोटी नहीं देखी, लेकिन आप (सल्ल०) रुकूअ और सजदे पूरी तरह करते थे। एक और रिवायत में हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) ने यह भी कहा कि यह चाश्त का वक़्त था (या चाश्त की नमाज़ थी)।

मुसनद अबू-दाऊद में हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) से रिवायत है कि मक्का-विजय के दिन नबी (सल्ल०) मेरे घर तशरीफ़ लाए। एक सेविका एक बरतन लेकर आई, जिसमें पीने की कोई चीज़ थी (कुछ रिवायतों के मुताबिक़ शरबत था)। सेविका ने वह बरतन आप (सल्ल०) को दे दिया। आप (सल्ल०) ने थोड़ा-सा पी लिया और फिर मुझे दे दिया। मैंने उसको पी लिया और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं रोज़े से थी और मैंने पी लिया।"

आप (सल्ल०) ने पूछा, "क्या तुमने कोई क़ज़ा (पहले का बाक़ी) रोज़ा रखा था। मैंने कहा, "नहीं।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर यह रोज़ा नफ़्ल था, तो कोई नुक़सान नहीं।"

मुसनद अहमद और तिरमिज़ी की एक रिवायत में है कि उम्मे-हानी (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं रोज़े से थी।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नफ़्ल रोज़े रखनेवाला अपने नफ़्स का ख़ुद मालिक है, चाहे रोज़ा रखे, चाहे न रखे।"

मुसनद अहमद में यह भी है कि नबी (सल्ल०) ने उम्मे-हानी (रज़ि०) से रोज़ा तोड़ने की वजह पूछी तो उन्होंने कहा, "मैं आपका जूठा वापस नहीं कर सकती थी।"

इस रिवायत से यह पता चलता है कि उम्मे-हानी (रज़ि०) मक्का की जीत से पहले ही मुसलमान हो चुकी थीं और रोज़े रखा करती थीं, और यह भी ज़ाहिर होता है कि उन्हें नबी (सल्ल०) से बहुत अक़ीदत और मुहब्बत थी।

सहीह मुस्लिम में है कि एक बार नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) से निकाह की ख़ाहिश ज़ाहिर की तो उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी उम्र ज़्यादा हो चुकी है और मेरे बच्चे भी हैं, जिनकी परवरिश मेरे लिए ज़रूरी है।" इस मौक़े पर नबी (सल्ल०) ने क़ुरैश की औरतों के बारे में फ़रमाया कि "ऊँट की सवारी करनेवाली औरतों में सबसे बेहतर क़ुरैश की औरतें हैं, बचपन में अपने यतीम बच्चे से मुहब्बत रखती हैं और अपने शौहर के माल की बहुत ज़्यादा हिफ़ाज़त करती हैं।"

नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) से बहुत लगाव रखते थे। एक बार उनसे फ़रमाया, "उम्मे-हानी, बकरी ले लो, यह बरकतवाला जानवर है।"

इमाम अहमद (रह०) ने लिखा है कि एक बार उम्मे-हानी (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अब मैं बूढ़ी हो गई हूँ, चलने-फिरने में कमज़ोरी महसूस होती है, कोई ऐसा वज़ीफ़ा बता दीजिए जिसे मैं बैठे-बैठे पढ़ सकूँ।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक सौ बार 'सुब्हानल्लाह', एक सौ बार 'अल-हमदुलिल्लाह', एक सौ बार 'अल्लाहु-अकबर' और एक सौ बार 'ला-इला-ह इल्लल्लाह', कह लिया करो। कुछ रिवायतों में है कि

हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से फ़िक़्ह के मसले और क़ुरआन की आयतों के मतलब भी पूछा करती थीं।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) का बयान है कि हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) का इन्तिक़ाल अमीर मुआविया (रज़ि०) की हुकूमत के ज़माने में हुआ। उनकी औलाद में अम्र, हानी, यूसुफ़ और जादा मशहूर हैं।

इल्म और फ़ज़्ल में हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि०) का दर्जा बहुत बुलन्द था। उनसे छियालीस हदीसें रिवायत की गई हैं। उनसे रिवायत करनेवालों में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०), अब्दुल्लाह-बिन-हारिस (रज़ि०), इब्ने-अबू-लैला (रह०), मुजाहिद (रह०), उरवा (रह०) और शअ्बी (रह०) जैसे बड़े दर्जे के लोग शामिल हैं।

हज़रत हौला (रज़ि०)

सीरत-निगारों ने इनका हसब-नसब नहीं लिखा है, लेकिन इनके सहाबिया होने पर सबका इत्तिफ़ाक़ है।

अल्लामा इब्ने-असीर (रह०) का बयान है कि वे इत्र की तिजारत किया करती थीं। एक बार उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास आईं और कहा कि मेरे शौहर बग़ैर किसी वजह के मेरी अनदेखी करते हैं, हालाँकि मैं हर रात को ख़ुशबू लगाती हूँ। बनाव-शृंगार में भी कोई कमी नहीं करती लेकिन फिर भी वे मेरी तरफ़ ध्यान नहीं देते और मुँह फेर लेते हैं।

नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए और आप (सल्ल०) को हज़रत हौला (रज़ि०) की शिकायत मालूम हुई तो आप (सल्ल०) ने उनसे फ़रमाया, "जाओ और अपने शौहर की फ़रमाँबरदारी करती रहो।"

मुसनद अहमद में है कि हज़रत हौला (रज़ि०) को अल्लाह की इबादत का बहुत शौक़ था। सारी-सारी रात नमाज़ें पढ़ती रहती थीं।

एक दिन नबी (सल्ल०) हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास बैठे हुए थे कि सामने से हौला (रज़ि०) गुज़रीं। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! ये हौला हैं, रात-भर नहीं सोतीं और बराबर नमाज़ें पढ़ती रहती हैं।" नबी (सल्ल०) ने हैरत से फ़रमाया, "रात-भर नहीं सोतीं! इनसान को इतना काम करना चाहिए जिसे हमेशा निभा सके।"

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं।

हज़रत उम्मे-हकीम-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

सन् 8 हिजरी रमज़ान के महीने में क़ुरैश जंग हार गए और मुसलमान जीतकर मक्का में दाख़िल हुए। लेकिन उनका दाख़िल होना दुनिया के दूसरे जीतनेवालों की तरह नहीं था। कुछ ऐसे ज़ालिमों को छोड़कर, जिनका क़त्ल करना वाजिब हो चुका था या उन कुछ मुशरिकों के अलावा जिन्होंने ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) के दस्ते को रोकने की कोशिश की थी, मक्का के किसी और मुशरिक को ज़रा-सी भी तकलीफ़ न पहुँची।

दस हज़ार मुसलमान नबी (सल्ल०) की रहनुमाई में मक्का में इस तरह दाख़िल हुए जैसे सुबह की हवा बग़ीचे में दाख़िल होती है। नबी (सल्ल०) ने मक्कावालों पर ख़ूब-ख़ूब रहम का मामला किया। ये वही लोग थे जो मुसलमानों के ख़ून के प्यासे थे और जिन्होंने उनको सताने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। नबी (सल्ल०) ने सबको माफ़ कर दिया— न किसी के जुर्म पर पकड़ की, न किसी से बदला लिया। लेकिन मक्का में कुछ लोग ऐसे भी थे जिनके दिल की चुभन उन्हें किसी पल चैन न लेने देती थी। अपने पिछले दिनों की करतूतों की वजह से उन्हें बिलकुल उम्मीद नहीं थी कि नबी (सल्ल०) उनपर क़ाबू पाकर उन्हें ज़िन्दा छोड़ेंगे। इसलिए उन्होंने मक्का से भाग जाने ही में भलाई समझी।

उसी ज़माने की बात है कि मक्का की एक ख़ातून नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं और बड़े शौक़ और लगन से इस्लाम क़बूल कर लिया, फिर नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की—

"ऐ अल्लाह के रसूल! मेरा शौहर अपनी जान के डर से यमन भाग गया है, अगर आप उसे अमान दे दें तो मैं उसको वापस ले आऊँ।"

नबी (सल्ल०) बड़े रहमदिल और मेहरबान थे। आप (सल्ल०) ने फ़ौरन फ़रमाया, "जाओ मैंने उसे अमान दी।"

नबी (सल्ल०) का हुक्म सुनकर ख़ातून की ख़ुशी का ठिकाना न रहा क्योंकि उनके शौहर एक ऐसे शख़्स थे जिनकी इस्लाम-दुश्मनी के बारे में सभी जानते थे और जिन्होंने मुसलमानों को सताने का कोई मौक़ा कभी हाथ से नहीं जाने दिया था। अब उनके लिए मक्का में एक दिन भी गुज़ारना मुश्किल था, वे उसी वक़्त अपने रूमी ग़ुलाम के साथ अपने शौहर की तलाश में निकल पड़ीं।

ये ख़ातून, जिनका नबी (सल्ल०) को इतना ख़याल था कि उनके शौहर के घिनावने अतीत के बावजूद उनकी दरख़ास्त मंज़ूर कर ली, इकरिमा-बिन-अबू-जह्ल की बीवी हज़रत उम्मे-हकीम-बिन्ते-हारिस मख़ज़ूमिया (रज़ि०) थीं।

हज़रत उम्मे-हकीम की गिनती नबी (सल्ल०) की मशहूर सहाबियात में होती है। सीरत-निगारों ने उनका अस्ल नाम नहीं लिखा, वे अपनी कुन्नियत से ही मशहूर हैं। उनका ताल्लुक़ क़ुरैश के मशहूर क़बीले बनू-मख़ज़ूम से था।

नसब का सिलसिला यह है : उम्मे-हकीम-बिन्ते-हारिस-बिन-हिशाम-बिन-मुग़ीरा-बिन-अब्दुल्लाह-बिन-अम्रे-बिन-मख़ज़ूम-बिन-यक़ज़ा-बिन-मुर्रा-बिन-काब-बिन-लुऐ।

माँ का नाम फ़ातिमा-बिन्ते-वलीद-बिन-मुग़ीरा था, जो हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) की बहन थीं।

हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) ने जिस घराने में आँखें खोलीं, वह कुफ़्र और शिर्क का अड्डा था। उनके बाप अबू-अब्दुर्रहमान हारिस-बिन-हिशाम, अबू-जह्ल (अम्र-बिन-हिशाम) के सगे भाई थे। वे दोनों भाई इस्लाम के कट्टर दुश्मन थे। यही हाल माँ और मामू ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) का था। इस माहौल में उनके लिए इस्लाम की रौशनी हासिल करना सख़्त मुश्किल था। शादी भी हुई तो अपने चचा अबू-जह्ल के बेटे इकरिमा (रज़ि०) से जो इस्लाम-दुश्मनी में अपने बाप के मददगार थे।

सन् 2 हिजरी में जब अबू-जह्ल बद्र की लड़ाई में ज़िल्लत की मौत मारा गया तो इकरिमा (रज़ि०) ने अपने बाप के छोड़े हुए काम को पूरा करने का बीड़ा उठाया और मक्का की विजय तक मुसलमानों को सताने और उनपर ज़ुल्म ढाने में आगे-आगे रहे। उहुद की लड़ाई में वे अपनी बीवी उम्मे-हकीम (रज़ि०) को अपने साथ ले गए और हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) के साथ मिलकर मुसलमानों को सख़्त नुक़सान पहुँचाया। अहज़ाब की लड़ाई में बनू-किनाना को साथ लेकर मदीना पर चढ़ाई की। सन् 8 हिजरी में मुसलमानों के मददगार क़बीले बनू-ख़ुज़ाआ के लोगों को क़त्ल करने में हिस्सा लिया और हुदैबिया की संधि को तोड़ डाला।

मक्का की जीत के मौक़े पर भी उन्होंने कुछ मुशरिकों को साथ लेकर उस फ़ौजी दस्ते से टकराने की कोशिश की जो ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) की रहनुमाई में मक्का में दाख़िल हो रहा था। ये वही ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) थे जो मुसलमानों के ख़िलाफ़ कई लड़ाइयों में इकरिमा (रज़ि०) के कंधे-से-कंधा मिलाकर लड़ चुके थे। वे हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) के सगे मामूँ थे और रिश्ते में इकरिमा (रज़ि०) के

चचा होते थे। इकरिमा (रज़ि०) के बाप अबू-जह्ल और ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) आपस में चचेरे भाई थे।

मक्का की जीत से पहले हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) मुसलमान हो गए थे, लेकिन उनकी यह पेशक़दमी भी इकरिमा (रज़ि०) को सीधे रास्ते पर न ला सकी। इस्लाम के ख़िलाफ़ इकरिमा (रज़ि०) की यही कोशिशें और करतूत थे कि मक्का-विजय के बाद नबी (सल्ल०) के सामने जाने की उनकी हिम्मत न पड़ी और वे अपनी जान बचाने के लिए यमन की तरफ़ भाग निकले।

इधर हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०), उनके बाप हारिस-बिन-हिशाम (रज़ि०) और माँ फ़ातिमा-बिन्ते-वलीद (रज़ि०) तीनों नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और सच्चे दिल से इस्लाम क़बूल कर लिया।

हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) को अपने शौहर से बड़ी मुहब्बत थी। उन्हें यह सहन न हुआ कि इकरिमा (रज़ि०) कुफ़्र और शिर्क के दलदल में फँसे रहें। इसलिए उन्होंने बड़ी दर्दमन्दी से नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि उनके शौहर की जान बख़्श दी जाए। नबी (सल्ल०) ने उनकी यह दरख़ास्त क़बूल कर ली और वे इकरिमा (रज़ि०) की तलाश में समुद्र-तट की तरफ़ चल पड़ीं।

इकरिमा (रज़ि०) जब मक्का से भागकर लाल सागर के साहिल पर पहुँचे तो यमन जानेवाली एक नौका तैयार खड़ी थी। वे उसपर बैठ गए। कुछ दूर जाकर वह नौका तूफ़ान में घिर गई। इकरिमा (रज़ि०) ने 'लात' और 'उज़्ज़ा' (मूर्तियाँ, जिनकी मक्का के मुशरिक पूजा करते थे) को पुकारना शुरू कर दिया। मल्लाह ने कहा, "यह अल्लाह को पुकारने का वक़्त है, लात और उज़्ज़ा नौका को भँवर से नहीं निकाल सकतीं।" यह बात इकरिमा (रज़ि०) के दिल में उतर गई। हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने लिखा है कि इस मौक़े पर इकरिमा (रज़ि०) ने यह दुआ की—

"ऐ अल्लाह, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अगर इस तूफ़ान ने मुझे ज़िन्दा छोड़ दिया तो मैं ख़ुद को मुहम्मद (सल्ल०) के सामने पेश कर दूँगा। वे बड़े मेहरबान और रहमदिल हैं। उम्मीद है कि वे मुझसे बदला न लेंगे।"

अल्लाह की क़ुदरत, नौका बिलकुल ठीक हालत में उसी जगह किनारे लगी जहाँ से चली थी। इसी दौरान हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) भी अपने शौहर को तलाश करती हुई साहिल पर आ पहुँची थीं। उन्होंने हज़रत इकरिमा (रज़ि०) को बताया कि मैं एक ऐसे इनसान के पास से आ रही हूँ जो सबसे ज़्यादा नेक, सबसे ज़्यादा मेहरबान और भलाई का सुलूक करनेवाले हैं। मैंने उनसे तुम्हारे लिए अमान हासिल कर ली है, अब मेरे साथ उनकी ख़िदमत में चलो।

इकरिमा (रज़ि०) फ़ौरन तैयार हो गए और हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए। नबी (सल्ल०) उन्हें देखकर बहुत ख़ुश हुए और "ख़ुश-आमदीद! ऐ परदेसी सवार!" कहकर बड़ी मुहब्बत से उनका स्वागत किया।

हज़रत इकरिमा (रज़ि०) ने अपनी बीवी हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) की तरफ़ इशारा करके कहा, "इसने मुझे बताया है कि आपने मेरी जान बख़्शी कर दी है।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ उसने सच कहा, तुम महफ़ूज़ हो।"

इकरिमा (रज़ि०) पर इस मेहरबानी का ऐसा असर हुआ कि वे उसी वक़्त सच्चे दिल से ईमान ले आए और इस बात की प्रतिज्ञा की कि आगे से मेरी दौलत और जान अल्लाह के रास्ते के लिए ही रहेगी। उसके बाद उनकी ज़िन्दगी में एक बहुत बड़ा इन्क़िलाब पैदा हो गया। जिस जोश से वे इस्लाम से दुश्मनी करते थे उससे कहीं ज़्यादा जोश और लगन से उन्होंने इस्लाम की ख़िदमत की। सन् 11 हिजरी में नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की ख़िलाफ़त

के ज़माने में इरतिदाद (इस्लाम से कुफ़्र व शिर्क की तरफ़ पलटना) के फ़ित्ने (बिगाड़) ने सिर उठाया तो उन्होंने उस फ़ित्ने को जड़ से उखाड़ फेंकने में सिर-धड़ की बाज़ी लगा दी।

जब यह विद्रोह सिरे से ख़त्म हो गया और मुसलमानों ने सीरिया पर चढ़ाई की तो हज़रत इकरिमा (रज़ि०) अपने साथ हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) को लेकर सीरिया जानेवाले मुजाहिदों में शामिल हो गए। कई लड़ाइयों में जान की बाज़ी लगाकर रूमियों के ख़िलाफ़ जिहाद किया। आख़िरकार अजनादैन की लड़ाई में बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गए और हज़रत उम्मे-हकीम परदेस में बेवा हो गईं।

हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) की इद्दत के दिन पूरे हो गए तो उनके लिए निकाह के पैग़ाम आने लगे। उनमें हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद-बिन-आस (रज़ि०) का पैग़ाम भी था। हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) ने और सारे पैग़ाम तो रद्द कर दिए लेकिन हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद-बिन-आस (रज़ि०) के पैग़ाम पर राज़ी हो गईं। हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद-बिन-आस (रज़ि०) बड़े बुलन्द मर्तबा सहाबी थे। वे 'साबिक़ूनल-अव्वलून' (यानी नुबूवत के बिलकुल शुरू के ज़माने में इस्लाम क़बूल करनेवालों) में से थे। दो हिजरतों, यानी हबशा और मदीना की हिजरत का सौभाग्य उन्हें प्राप्त था। मक्का की विजय, हुनैन, ताइफ़ और तबूक की लड़ाइयों में भी नबी (सल्ल०) का साथ देने की ख़ुशनसीबी हासिल कर चुके थे। इसी लिए हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) ने उन्हें पसन्द किया। चुनाँचे उनका निकाह चार सौ दीनार महर पर हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०) के साथ "मरजुस-सुफ़र" नामी मक़ाम पर हो गया। यह जगह दमिश्क़ से क़रीब है और उस वक़्त इस्लामी फ़ौज दमिश्क़ की तरफ़ पेशक़दमी कर रही थी। निकाह के बाद हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०) ने 'रस्मे-उरूसी' अदा किए जाने की ख़ाहिश ज़ाहिर की। हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) ने कहा, "दुश्मन सिर पर खड़ा

है और उससे हर वक़्त लड़ाई का ख़तरा है, इसलिए कुछ दिन इन्तिज़ार के बाद इत्मीनान से यह रस्म हो जाए तो बेहतर होगा।"

हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०) ने कहा, "मुझे इस लड़ाई में अपनी शहादत का यक़ीन है।"

उम्मे-हकीम (रज़ि०) ख़ामोश हो गईं। एक पुल के पास जो अब "क़न्तरा-उम्मे-हकीम" (उम्मे-हकीम का पुल) कहलाता है, 'रस्मे-उरूसी' हुई। सुबह को वलीमे की दावत हुई। अभी लोग खाना खा ही रहे थे कि रूमियों ने हमला कर दिया। एक मज़बूत डील-डौलवाला रूमी सबसे आगे-आगे था और मुसलमानों को ललकार रहा था।

हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०) तीर की तरह झपटकर उसके मुक़ाबले के लिए निकले और बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए उसके हाथों शहीद हो गए। इस के बाद लड़ाई छिड़ गई। हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) अपने शौहर की शहादत का हाल देख रही थीं। उसी वक़्त बड़े जोश से उठीं, अपने कपड़ों को बाँधा और खेमे की लाठी उखाड़कर लड़ाई में शरीक हो गईं। जख़्मी शेरनी की तरह बढ़-बढ़कर हमले करती थीं और अपनी लाठी से रूमियों को मार गिराती थीं। इस लड़ाई में उन्होंने सात रूमियों को क़त्ल कर दिया।

एक रिवायत में है कि हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) यरमूक की भयंकर लड़ाई में भी शामिल हुईं और दूसरी औरतों के साथ मिलकर रूमियों के ख़िलाफ़ बड़ी बहादुरी से लड़ीं।

हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात सीरत की किताबों में नहीं मिलते। इन्तिक़ाल के ज़माने और औलाद की कोई चर्चा भी नहीं मिलती।

हज़रत सफ़ीया-बिन्ते-रबीआ (रज़ि०)

हज़रत सफ़ीया-बिन्ते-रबीआ (रज़ि०) का ताल्लुक़ क़ुरैश के इज़्ज़तदार घराने बनू-अब्दे-शम्स से था।

नसब का सिलसिला यह है : सफ़ीया-बिन्ते-रबीआ-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-मनाफ़-बिन-क़ुसय्य।

क़ुरैश के नामी रईस उत्बा-बिन-रबीआ और शैबा-बिन-रबीआ उनके भाई थे। वे दोनों बद्र की लड़ाई में मारे गए।

हज़रत सफ़ीया (रज़ि०) का निकाह उसमान-बिन-शरीद मख़ज़ूमी से हुआ। उनसे हज़रत शम्मास (रज़ि०) पैदा हुए, जिनकी गिनती बुलन्द मर्तबा सहाबियों में होती है। उसमान-बिन-शरीद ने इस्लाम का ज़माना नहीं पाया। शम्मास (रज़ि०) अभी नन्हे बच्चे ही थे कि उनका इन्तिक़ाल हो गया। यतीम शम्मास (रज़ि०) की परवरिश की ज़िम्मेदारी उनके मामूँ उत्बा-बिन-रबीआ ने ले ली और अपने बच्चों की तरह उनकी परवरिश की। शम्मास (रज़ि०) अपने नाम की ही तरह ख़ूबसूरत भी थे और बेहतरीन अख़लाक़ और आदतों के मालिक भी। जब नबी (सल्ल०) ने लोगों को एक अल्लाह की बन्दगी की दावत देनी शुरू की, तो हज़रत शम्मास (रज़ि०) ने बिना किसी झिझक के इस्लाम क़बूल कर लिया। हज़रत सफ़ीया (रज़ि०) भी भाइयों की इस्लाम-दुश्मनी के बावजूद अपने बेटे के साथ ईमान ले आईं।

मक्का के मुशरिक मुसलमानों पर ज़ुल्म के पहाड़ तोड़ने लगे और उनका जीना दूभर कर दिया तो नबी (सल्ल०) ने सहाबियों को हिजरत करके हबशा चले जाने का हुक्म दिया। इसलिए बहुत-से मज़लूम मुसलमान सन् 5 और 6 नबवी में हिजरत करके हबशा चले गए। उनमें हज़रत सफ़ीया (रज़ि०) और हज़रत शम्मास (रज़ि०) भी शामिल थे। कुछ मुद्दत गुज़ारकर दोनों माँ-बेटे वहाँ से मक्का वापस आए और फिर

मक्का से मदीना की तरफ़ हिजरत की। मदीना में वे हज़रत मुबश्शिर-बिन-अब्दुल-मुन्ज़िर अंसारी (रज़ि०) के घर मेहमान ठहरे।

हज़रत शम्मास (रज़ि०) पहले बद्र की लड़ाई में शरीक हुए और फिर उन्होंने उहुद की लड़ाई में बड़ी बहादुरी से हिस्सा लिया। लड़ाई में वे सख़्त ज़ख़्मी हो गए और एक दिन के बाद उनका इन्तिक़ाल हो गया।

हज़रत सफ़ीया (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात किसी किताब में नहीं मिलते।

हज़रत तय्यिबा-बिन्ते-वह्ब (रज़ि०)

हज़रत तय्यिबा-बिन्ते-वह्ब (रज़ि०) बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) की माँ थीं। उनका ताल्लुक़ 'अक' क़बीले से था। अल्लामा इब्ने-असीर (रह०) ने लिखा है कि वे अपने बेटे हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) की दावत पर ईमान लाईं। उनका इन्तिक़ाल मदीना पहुँचकर हुआ।

ज़्यादा हालात मालूम नहीं।

हज़रत उम्मे-हकीम-बिन्ते-ज़ुबैर (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-हकीम-बिन्ते-ज़ुबैर (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के सगे चचा हज़रत ज़ुबैर-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी थीं। इन्होंने इस्लाम क़बूल किया और सहाबियात में शामिल हुईं। हज़रत ज़ुबाआ (रज़ि०) उनकी बहन और हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) उनके भाई थे। हज़रत ज़ुबाआ का निकाह नबी (सल्ल०) ने अपने जाँनिसार सहाबी हज़रत मिक़दाद-बिन-असवद (रज़ि०) से कर दिया था। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) अजनादैन की लड़ाई में बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हुए।

नबी (सल्ल०) इन भाई-बहनों से बहुत लगाव रखते थे। हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात किसी किताब में नहीं मिलते।

हज़रत हलीमा सादीया (रज़ि०)

नाम हलीमा था। ये अबू-ज़ुएब अब्दुल्लाह-बिन-हारिस की बेटी और हारिस-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बिन-रिफ़ाआ की बीवी थीं।

हज़रत हलीमा (रज़ि०) का ताल्लुक़ साद-बिन-बक्र के क़बीले से था, जो हवाज़िन क़बीले का हिस्सा था। यह क़बीला सुन्दर और उच्च कोटि की बोली और अपने इलाक़े के मीठे पानी की वजह से मशहूर था।

नबी (सल्ल०) फ़रमाया करते थे कि अल्लाह ने मुझे सारे अरब में सबसे अच्छी ज़बान बोलनेवाला बनाया है। एक तो मेरे क़बीले क़ुरैश की बोली मीठी और उच्च कोटि की है, दूसरे मेरी परवरिश बनू-साद क़बीले में हुई, जो उपमाओं से सजी-सँवरी, खुबसूरत और आसान ज़बान के लिए मशहूर है।

अरब के शरीफ़ और ख़ानदानी लोगों का यह दस्तूर था कि बच्चों को माँ के पास नहीं रखते थे बल्कि परवरिश के लिए दूसरी औरतों को दे देते थे और आसपास के देहात के क़बीलों में भेज देते थे। बच्चे देहात के खुले माहौल में परवरिश पाते। कुछ सालों के बाद उनके माँ-बाप उन्हें वापस ले जाते। थोड़े-थोड़े दिनों के बाद गाँव की ग़रीब औरतें शहर आतीं और जो बच्चे इस मुद्दत में पैदा होते उन्हें साथ ले जातीं।

नबी (सल्ल०) ने पैदाइश के बाद सात दिन तक अपनी माँ का दूध पिया। इसके बाद कुछ दिनों तक हज़रत सुवैबा (रज़ि०) ने दूध पिलाया। इन्हीं दिनों बनू-साद क़बीले की कुछ औरतें बच्चे लेने मक्का आईं। इनमें

हज़रत हलीमा (रज़ि०) भी थीं। दूसरी सब औरतों ने मालदार लोगों के बच्चे ले लिए। लेकिन हज़रत हलीमा (रज़ि०) को कोई बच्चा न मिला। वापस जानेवाली थीं कि उन्हें पता चला कि क़ुरैश के सरदार अब्दुल-मुत्तलिब का एक यतीम पोता है। अपने शौहर से मशवरा किया कि इस बच्चे का बाप तो दुनिया में है नहीं कि बच्चे की परवरिश के बदले में हम कुछ अच्छी उम्मीद करें, लेकिन उसके दादा के ऊँचे ख़ानदान और शराफ़त से यह उम्मीद की जा सकती है कि शायद इस बच्चे के ज़रिए से अल्लाह हमारे लिए भलाई की कोई सूरत निकाल दे।

इनके शौहर ने कहा, "कोई हरज नहीं, उस बच्चे को ज़रूर ले लो, ख़ाली हाथ जाना अच्छा नहीं लगता।"

हज़रत हलीमा (रज़ि०) फ़ौरन जाकर मक्का से यतीम बच्चे को ले आईं। उन्हें क्या ख़बर थी कि यह बच्चा दीन और दुनिया का सरदार है और इसे दूध पिलाकर वे इज़्ज़त और अज़मत के बुलन्द मक़ाम को हासिल करनेवाली हैं।

उन दिनों अरब में अकाल पड़ा था। सूखे की वजह से जानवरों के थनों में दूध सूख गया था। भुखमरी की वजह से औरतों की छातियों में भी दूध नहीं उतरता था और उनके बच्चे भूख से बिलबिलाते रहते थे। हज़रत हलीमा (रज़ि०) मक्का आईं तो उनके साथ उनका दूध-पीता बच्चा भी था। वह भी भूखा-प्यासा हर वक़्त रोता रहता था।

हज़रत हलीमा (रज़ि०) बयान करती हैं कि जिस दिन मैंने नबी (सल्ल०) को गोद में लिया, हमारे सारे हालात में बदलाव आ गया। मेरी सूखी छातियों में दूध उतर आया और हमारी ऊँटनी के थन भी दूध से भर गए। दोनों बच्चों ने जी भरकर दूध पिया और हमने भी जी भरकर ऊँटनी का दूध पिया। जब मक्का से चलने लगे तो हमारा मरियल गधा, जो सारे क़ाफ़िले के पीछे चलता था, ऐसी तेज़ चाल से चला कि सारे क़ाफ़िले से आगे निकल गया। मेरा शौहर और क़ाफ़िले के दूसरे लोग

बार-बार यह कहते थे कि यह बच्चा बहुत बरकतवाला है और हलीमा बड़ी ख़ुशक़िस्मत है कि उसे ऐसा मुबारक बच्चा मिल गया है। जब हम अपने घर पहुँचे तो हमारी बकरियों के दूध थन से भर गए। गाँव के दूसरे जानवरों के थन अभी तक सूखे पड़े थे और लोग हमारी हालत पर रश्क करते थे। आख़िर गाँववाले मेरे जानवरों के साथ अपने जानवर चराने लगे और अल्लाह की क़ुदरत से इन जानवरों के थनों में भी दूध उतर गया।

हलीमा (रज़ि०) और उनके घरवाले इस ख़ुशनसीब बच्चे पर दिलो-जान से फ़िदा थे और बड़ी मुहब्बत व मेहरबानी से नबी (सल्ल०) की परवरिश करते थे। जब नबी (सल्ल०) की उम्र दो साल की हुई तो हज़रत हलीमा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) को साथ लेकर बीबी आमना के पास मक्का आईं। वे अपने प्यारे बेटे को देखकर ख़ुशी से खिल उठीं और अपने बच्चे को ख़ूब प्यार किया। बच्चे को अपने-आपसे जुदा करने का दिल नहीं चाहता था, लेकिन हज़रत हलीमा (रज़ि०) ने कहा, "मक्का का मौसम इस वक़्त बहुत ख़राब है, अच्छा है कि आप अभी इस बच्चे को मेरे पास ही रहने दें।"

बीबी आमिना ने उनकी बात मान ली और हज़रत हलीमा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) को साथ लेकर वापस अपने क़बीले में आ गईं।

एक रिवायत में है कि हज़रत हलीमा (रज़ि०) नन्हें नबी (सल्ल०) को खाना खिलाते वक़्त यह लोरी सुनाया करती थीं।

> "ऐ ख़ुदा, अगर तूने इसको मेरे हवाले किया है तो इसकी ख़ूब मदद फ़रमा, और इसे इल्म और इज़्ज़त की बुलन्दी और तरक़्क़ी नसीब फ़रमा, और इसे शैतानों और उनकी बुराइयों से महफ़ूज़ रख, जितना कि इसका हक़ है।"

नबी (सल्ल०) ने पाँच साल तक हज़रत हलीमा (रज़ि०) के पास परवरिश पाई। फिर एक दिन "शक़्क़ुस-सद्र" (सीने का चीरा जाना) का

वाक़िआ पेश आया। वाक़िआ यूँ है कि एक दिन हज़रत हलीमा (रज़ि०) के दो बच्चे दौड़ते हुए उनके पास आए और बोले कि दो आदमी जिन्होंने सफ़ेद कपड़े पहन रखे थे, हमारे क़ुरैशी भाई को पकड़कर ले गए और उसे क़त्ल कर डाला। हज़रत हलीमा (रज़ि०) और उनके शौहर हारिस बेताब होकर उधर दौड़े। देखा कि नबी (सल्ल०) सही-सलामत हैं लेकिन उनके चेहरे का रंग बदला हुआ है। हज़रत हलीमा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) को गले से लगा लिया और पूछा कि क्या हुआ था?

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दो आदमी, जिन्होंने सफ़ेद कपड़े पहन रखे थे, मेरे पास आए और मुझे चित लिटाकर मेरा सीना चीर डाला और उसमें से मेरा दिल निकाला और फिर उसमें से कोई चीज़ निकाली। फिर मेरे दिल को सीने में रखकर दुरुस्त कर दिया।"

हज़रत हलीमा (रज़ि०) और उनके शौहर यह वाक़िआ सुनकर बहुत हैरान हुए और इस बात से फ़िक्रमन्द हुए कि कहीं बच्चे को कोई नुक़्सान न पहुँच जाए। इसलिए मशवरा करने के बाद वे नबी (सल्ल०) को साथ लेकर मक्का पहुँचे और 'हाथियोंवाली घटना' (आमुल-फ़ील) के छठे साल जबकि नबी (सल्ल०) की उम्र पाँच साल और दो दिन की थी, दुनिया की सबसे क़ीमती अमानत को उनकी माँ के हवाले कर दिया। फिर उन्होंने सीना चीरे जाने की घटना बयान की और नन्हें नबी (सल्ल०) के बारे में अपनी चिन्ता व्यक्त की। बीबी आमिना ने कहा कि तुम्हें डर है कि कोई जिन्न या शैतान इस बच्चे को नुक़सान पहुँचाएगा। ऐसा नहीं होगा, मेरा बेटा दुनिया में बुलन्द मर्तबेवाला इनसान बननेवाला है। यह हर आफ़त से महफ़ूज़ रहेगा और अल्लाह इसकी हर हालत में हिफ़ाज़त करेगा। उसके बाद बीबी आमिना ने कई हैरत भरी निशानियाँ बयान कीं जो उन्हें उम्मीद से होने की हालत में और नबी (सल्ल०) की पैदाइश के ज़माने में पेश आई थीं।

हज़रत हलीमा (रज़ि०) का दिल तो न चाहता था, फिर भी वे इस क़ीमती दौलत को मक्का में छोड़कर अपने क़बीले में वापस आ गईं।

हज़रत हलीमा (रज़ि०) उसके बाद बहुत ज़माने तक ज़िन्दा रहीं। इब्ने-साद (रह०) ने मुहम्मद-बिन-मुंकदिर के हवाले से बयान किया है कि एक बार एक ख़ातून नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं, उन्होंने बचपन में नबी (सल्ल०) को दूध पिलाया था। उन्हें देखकर नबी (सल्ल०) "मेरी माँ, मेरी माँ" कहते हुए उठे और अपनी चादर बिछाकर उन्हें बैठाया। ये औरत हज़रत हलीमा (रज़ि०) ही थीं।

इब्ने-साद (रह०) ही की एक और रिवायत के मुताबिक़, नबी (सल्ल०) की हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से शादी के बाद एक बार हज़रत हलीमा (रज़ि०) आप (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और अपने इलाक़े में सूखे की शिकायत की। नबी (सल्ल०) ने उनको चालीस बकरियाँ और सामान से लदा हुआ एक ऊँट दिया।

अल्लामा सुहैली (रह०) लिखते हैं कि एक बार हलीमा सादीया (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं तो हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने उन्हें कई ऊँटनियाँ दीं, जिन्हें लेकर वे दुआएँ देती हुई गईं।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने लिखा है कि सन् 8 हिजरी में हुनैन की लड़ाई के बाद जब नबी (सल्ल०) 'जइर्राना' नामी मक़ाम पर तशरीफ़ फरमा थे, हज़रत हलीमा (रज़ि०) आप (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। नबी (सल्ल०) उनसे बहुत इज़्ज़त से पेश आए और अपनी मुबारक चादर बिछाकर उन्हें बैठाया। (कुछ दूसरी रिवायतों के मुताबिक़ आनेवाली ख़ातून हज़रत हलीमा (रज़ि०) नहीं, बल्कि उनकी बेटी शैमा (रज़ि०) थीं।)

इन रिवायतों से मालूम होता है कि हज़रत हलीमा (रज़ि०) कभी-कभी नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आती रहती थीं और नबी (सल्ल०) उनसे बड़ी इज़्ज़त, मेहरबानी और मुहब्बत से पेश आते थे।

सीरत की बहुत-सी किताबें हज़रत हलीमा (रज़ि०) के इस्लाम क़बूल करने और सहाबियात में शामिल होने की चर्चा नहीं करतीं।

लेकिन अन्दाज़ा यही होता है कि उन्होंने इस्लाम क़बूल किया है और वे सहाबियात में शामिल हैं।

इमाम सुहैली (रह०) ने बयान किया है कि हज़रत हलीमा (रज़ि०) के शौहर हारिस-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की नुबूवत के बाद एक बार मक्का आए और मुशरिकों के बहकाने के बावजूद उन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया और फिर उसपर मज़बूती से जमे रहे। ज़ाहिर है कि अपने शौहर के इस्लाम क़बूल कर लेने के बाद हज़रत हलीमा (रज़ि०) ने भी ज़रूर इस्लाम क़बूल कर लिया होगा। इस तरह उनके सहाबियात में शामिल होने में कोई शक नहीं।

हज़रत हलीमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के साल के बारे में सीरत की किसी किताब में कोई बयान नहीं मिलता।

हज़रत शैमा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

नाम जुदामा था लोग उन्हें शैमा के नाम से पुकारते थे।

बाप का नाम हारिस-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बिन-रिफ़ाआ था। माँ हज़रत हलीमा सादीया (रज़ि०) थीं, जिन्हें नबी (सल्ल०) की दाया बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जब नबी (सल्ल०) छोटे बच्चे थे और हलीमा (रज़ि०) की देख-रेख में परवरिश पा रहे थे तो शैमा नन्हें हुज़ूर (सल्ल०) को गोद में लेकर खिलाया करती थीं।

हुनैन की लड़ाई तक शैमा (रज़ि०) अपने क़बीले में गुमनामी की ज़िन्दगी गुज़ारती रहीं और इधर शैमा (रज़ि०) के नन्हें मुहम्मद (सल्ल०) को अल्लाह ने वह बुलन्दी और अज़मत दी कि जिन्न व फ़रिश्ते और दुनिया का ज़र्रा-ज़र्रा आपपर नाज़ करता था।

सन् 8 हिजरी, रमज़ान के महीने में नबी (सल्ल०) को मक्का पर जीत हासिल हुई और उसी साल शव्वाल के महीने में हुनैन की लड़ाई हुई। बनू-हवाज़िन और बनू-सक़ीफ़ के क़बीलों ने ताइफ़ की जागीर के लालच में चार हज़ार लड़ाकू सिपाहियों के साथ मक्का पर हमले का इरादा किया।

नबी (सल्ल०) को यह ख़बर मिली तो आप (सल्ल०) अपने जाँनिसारों के साथ मक्का से निकलकर हुनैन की घाटी में उतरे। एक हौलनाक लड़ाई के बाद दुश्मनों ने मुहँ की खाई और वे आप (सल्ल०) से अमान की दरख़ास्त करने लगे। नबी (सल्ल०) ने उन सबको माफ़ कर दिया और तमाम क़ैदियों को भी आज़ाद कर दिया।

उन्हीं क़ैदियों में हज़रत शैमा (रज़ि०) भी थीं। जब वे आप (सल्ल०) के सामने लाई गईं तो कहने लगीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं आपकी दूध-शरीक बहन हूँ।" नबी (सल्ल०) और शैमा (रज़ि०) दोनों ने बीबी हलीमा (रज़ि०) का दूध पिया था। इसके बाद उन्होंने एक ऐसा निशान बताया कि उनकी बात में शक की कोई गुंजाइश न रही।[1]

अपने बचपन के ज़माने को याद कर के नबी (सल्ल०) की आँखों में आँसू आ गए। आप (सल्ल०) ने अपनी मुबारक चादर ज़मीन पर बिछाकर बड़ी इज़्ज़त से हज़रत शैमा (रज़ि०) को बैठाया। फिर उनसे फ़रमाया, "बहन! अगर तुम मेरे पास रहना चाहती हो तो आराम से रहो और अगर अपने क़बीले में वापस जाना चाहती हो तो तुम्हें इख़्तियार है।"

---

1. कुछ रिवायतों में है कि बचपन में एक दिन हज़रत शैमा (रज़ि०) नन्हें नबी (सल्ल०) को खिला रहीं थी। किसी बात पर नाराज़ होकर नन्हें नबी (सल्ल०) ने शैमा (रज़ि०) के कंधें पर इस ज़ोर से दाँत काटा कि उसका निशान हमेशा के लिए बाक़ी रह गया। हुनैन की लड़ाई के मौक़े पर शैमा (रज़ि०) ने यही निशान नबी (सल्ल०) को दिखाया।

हज़रत शैमा (रज़ि०) की ज़िन्दगी उनके अपने क़बीले में ही गुज़री थी। उन्होंने वापस जाना पसन्द किया और साथ ही इस्लाम क़बूल कर लिया। नबी (सल्ल०) ने बड़ी मेहरबानी और इज़्ज़त के साथ उन्हें उनके क़बीले में वापस भेज दिया और साथ में कुछ रुपये, एक बकरी, तीन गुलाम और एक कनीज़ उन्हें दिए।

हज़रत शैमा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात किसी किताब में नहीं मिलते।

हज़रत हिन्द-बिन्ते-उत्बा (रज़ि०)

नाम हिन्द या हिन्दा था। क़ुरैश के ख़ानदान बनू-अब्दे-शम्स से थीं।

नसब-नामा यह है : हिन्द-बिन्ते-उत्बा-बिन-रबीआ-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-मनाफ़।

उत्बा-बिन-रबीआ क़ुरैश का बड़ा सरदार था।

माँ का नाम सफ़ीया-बिन्ते-उमैया था। उनका पहला निकाह फ़ाकिहा-बिन-मुग़ीरा मख़ज़ूमी से हुआ, लेकिन उनसे निभ न सकी। फिर उनका निकाह अबू-सुफ़ियान-बिन-हर्ब से हुआ।

हिन्द का बाप उत्बा-बिन-रबीआ और शौहर अबू-सुफ़ियान इस्लाम के कट्टर दुश्मन थे, हिन्द भी इस्लाम-दुश्मनी में उनसे कम न थीं। हिजरत के बाद सन् 2 हिजरी में बद्र की लड़ाई हुई। इस लड़ाई में हिन्द का बाप उत्बा क़ुरैश के कई दूसरे सरदारों के साथ मारा गया, जिनमें अबू-जह्ल भी था। इसके बाद मक्का के मुशरिकों का सरदार अबू-सुफ़ियान बना। हिन्द ने बड़े जोश से अपने शौहर का हाथ बँटाना शुरू किया। वे बड़ी जोशीली तक़रीरें करती थीं, बाप के क़त्ल से उनके दिल में बदले की आग भड़क उठी थी।

सन् 3 हिजरी में मक्का के मुशरिकों ने अबू-सुफ़ियान की रहनुमाई में बड़ी तैयारी के साथ मदीना पर हमला किया और उहुद की लड़ाई पेश आई। हिन्द ख़ासतौर से अपने बाप के क़ातिल हज़रत हमज़ा (रज़ि०) से बदला लेना चाहती थीं। इसके लिए जुबैर-बिन-मुतइम के ग़ुलाम वहशी (रज़ि०) को हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के क़त्ल के लिए तैयार किया। वहशी (रज़ि०) भाला फेंकने में माहिर थे। जब लड़ाई ख़ूब भड़क उठी तो हिन्द जोशीले 'रजज़' (ऐसे अशआर जो लड़ाई के मैदान में बहादुरों को जोश दिलाने के लिए पढ़े जाते हैं) पढ़-पढ़कर इस्लाम दुश्मनों को जोश दिला रही थीं। वहशी घात लगाकर बैठ गए। हज़रत हमज़ा (रज़ि०) जैसे ही उनके निशाने पर आए उन्होंने भाला फेंका जो हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के जिस्म से आर-पार हो गया और वे शहीद हो गए। इस्लाम-दुश्मनों की औरतों ने उस अज़ीम हस्ती की शहादत पर ख़ुशी के गीत गाए। हिन्द ने बदले के जोश में हज़रत हमज़ा (रज़ि०) का पेट फाड़कर कलेजा निकाल लिया और उसे चबा डाला। लेकिन गले से न उतर सका इसलिए उगलना पड़ा। नबी (सल्ल०) को इस दर्दनाक घटना से बहुत सदमा पहुँचा।

सन् 8 हिजरी में नबी (सल्ल०) ने मक्का पर विजय पाई और दस हज़ार सहाबियों के साथ मक्का में दाख़िल हुए। उस वक़्त कोई ऐसी ताक़त नहीं थी जो नबी (सल्ल०) को बदला लेने से रोक सकती, लेकिन नबी (सल्ल०) ने अपने कट्टर दुश्मनों को भी माफ़ कर दिया। यहाँ तक कि ऐलान फ़रमा दिया कि जो शख़्स अबू-सुफ़ियान के घर पनाह लेगा, उससे पूछताछ न की जाएगी। अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) ने मक्का की जीत से दो दिन पहले इस्लाम क़बूल किया था।

हिन्द (रज़ि०) पर भी अब इस्लाम की सच्चाई खुल चुकी थी, इसलिए वे बुर्क़ा पहनकर कुछ औरतों के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। इस मौक़े पर नबी (सल्ल०) से उनकी यह बातचीत हुई।

हिन्द (रज़ि०) : ऐ अल्लाह के रसूल! आप हमसे किन बातों पर बैअत लेते हैं?

नबी (सल्ल०): शिर्क न करो और एक अल्लाह को मानो!

हिन्द (रज़ि०) : यह प्रतिज्ञा आपने मर्दों से नहीं ली है फिर भी हमें मंज़ूर है।

नबी (सल्ल०) : चोरी न करो!

हिन्द (रज़ि०) : मैं अपने शौहर की इजाज़त के बिना कुछ ख़र्चे कर डालती हूँ, पता नहीं यह जाइज़ है या नहीं।

नबी (सल्ल०) : औलाद को क़त्ल न करो!

हिन्द (रज़ि०) : हमने तो अपने बच्चों की परवरिश की थी (क़त्ल नहीं किया था) जब बड़े हुए तो आपने क़त्ल कर डाला।

नबी (सल्ल०) की रहमत और मेहरबानी की कोई सीमा न थी। हालाँकि हिन्द (रज़ि०) ने आप (सल्ल०) के महबूब चचा का जिगर चबाया था और फिर इस मौक़े पर भी मुँह-फट तरीक़े से गुस्ताख़ी की बातें की थीं, लेकिन नबी (सल्ल०) ने उनकी तमाम ग़लतियों को माफ़ कर दिया। हिन्द को अपनी जान बख़्शे जाने की कोई उम्मीद नहीं थी लेकिन जब नबी (सल्ल०) ने उन्हें बिलकुल माफ़ कर दिया तो उनके दिल की दुनिया बदल गई और वे सच्चे दिल से मुसलमान हो गईं। उस वक़्त वे बेइख़्तियार बोल उठीं–

"ऐ अल्लाह के रसूल! इससे पहले आप से बढ़कर मेरे लिए कोई दुश्मन न था, लेकिन आज आप से बढ़कर मेरे लिए कोई महबूब व मुहतरम नहीं!"

इसके बाद घर जाकर उन्होंने अपने माबूदों (बुतों) के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। इस्लाम क़बूल करने के बाद हज़रत हिन्द (रज़ि०) ने अपनी पूरी ज़िन्दगी इस्लाम के लिए वक़्फ़ कर दी। हज़रत उमर (रज़ि०) के

ज़माने में वे अपने शौहर हज़रत अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) के साथ सीरिया जानेवाले मुजाहिदों की फ़ौज में शामिल हो गईं। जिस जोश और जज़्बे से ये दोनों मियाँ-बीवी मुसलमानों के ख़िलाफ़ लड़ाई में हिस्सा लेते थे उससे कई गुना उमंग और जोश से उन्होंने इस्लाम-दुश्मनों के ख़िलाफ़ जिहाद में हिस्सा लिया और इस्लाम क़बूल करने से पहले जो दुश्मनी इस्लाम से थी, उसका कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

सीरिया की लड़ाइयों में यरमूक की लड़ाई बड़ी ज़बरदस्त और फ़ैसला कर देनेवाली लड़ाई थी, जिसमें रोम के क़ैसर (सम्राट) ने अपनी पूरी ताक़त लड़ाई की भट्टी में झोंक दी थी। कुछ रिवायतों के मुताबिक़ रूमी सेना दो लाख के लगभग थी और एक रिवायत के मुताबिक़ दस लाख थी। मुसलमानों की संख्या तीस से चालीस हज़ार के बीच थी। इस लड़ाई में हज़रत हिन्द (रज़ि०) और उनके शौहर अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) बड़े जोश और उमंग से शरीक हुए। लड़ाई में दुश्मनों के ज़बरदस्त दबाव की वजह से मुसलमानों के क़दम कई बार पीछे हटे, लेकिन औरतों ने उन्हें शर्म दिलाई और ख़ुद ख़ेमों के लट्ठ उखाड़कर या पत्थर हाथों में लेकर रूमियों पर हमला कर दिया। हज़रत हिन्द (रज़ि०) 'रजज़' (लड़ाई के मैदान में पढ़े जानेवाले अशआर) पढ़-पढ़कर मुसलमानों में हिम्मत और जोश पैदा करती थीं।

अगर कोई मुसलमान लड़ाई से मुहँ मोड़कर पीठ फेरता तो उसके घोड़े के मुहँ पर ख़ेमे की लाठी मारकर उसे शर्म दिलातीं कि जन्नत छोड़कर जहन्नम ख़रीदते हो और अपनी औरतों को रूमियों के हवाले करते हो! ये हिन्द (रज़ि०) और दूसरी औरतों की हिम्मत और साबित-क़दमी ही थी कि पीछे हटते हुए मुसलमान पलटकर ऐसा ज़बरदस्त हमला करते कि दुश्मन की सेना में खलबली मच जाती और वे ख़ाक और ख़ून में लोटते नज़र आते।

एक मौक़े पर पीछे हटनेवाले मुसलमानों में हज़रत अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) भी थे। हिन्द (रज़ि०) ने उन्हें देख लिया, अपने ख़ेमे की लाठी लेकर उनकी तरफ़ लपकीं और कहा—

"ख़ुदा की क़सम! तुम अल्लाह के दीन से दुश्मनी करने और अल्लाह के सच्चे रसूल (सल्ल०) को झुठलाने में बहुत आगे-आगे थे। आज मौक़ा है कि इस लड़ाई के मैदान में सच्चे दीन की बुलन्दी और कामयाबी और नबी (सल्ल०) की ख़ुशनूदी के लिए अपनी जान न्योछावर कर दो, ताकि ख़ुदा के सामने कामयाब हो जाओ।"

हज़रत अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) का ज़मीर जाग उठा और उन्होंने पलटकर हाथ में तलवार ली और दुश्मन के टिड्डी दल में घुस गए।

इसी लड़ाई में एक मौक़े पर रूमी फ़ौज औरतों के ख़ेमे तक पहुँच गई। सभी औरतों ने जिनमें उम्मे-अबान (रज़ि०), उम्मे-हकीम (रज़ि०), ख़ौला-बिन्ते-अज़वर और हिन्द (रज़ि०) भी शामिल थीं, अपने ख़ेमों की लाठियाँ उखाड़कर उन रूमियों पर हमला कर दिया। जब तक मुसलमानों का एक दल उनकी मदद को न आ पहुँचा वे डटकर रूमियों का मुक़ाबला करती रहीं और कई रूमियों को मार गिराया।

हज़रत हिन्द (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में हुआ। उनकी औलाद में अमीर मुआविया (रज़ि०) इस्लामी तारीख़ की नामी शख़्सियत हैं।

इब्ने-असीर (रह०) का बयान है—

"हज़रत हिन्द (रज़ि०) एक ग़ैरतमन्द, स्वाभिमानी, सूझ-बूझ रखनेवाली अक़्लमन्द ख़ातून थीं।"

सहीह बुख़ारी की एक रिवायत से पता चलता है कि वे दूसरों के बहुत काम आती थीं।

उन्हें शायरी में भी दिलचस्पी थी। बद्र की लड़ाई में अपने भाई हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) को अशआर में बुरा-भला कहा। इसी तरह उहुद की लड़ाई में शेर पढ़-पढ़कर मक्का के मुशरिकों को लड़ाई पर उभारा करती थीं। जब उनकी ज़िन्दगी में इंक़िलाब आ गया और उन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया तो अपनी शायरी से इस्लाम के मुजाहिदों को इस्लाम-दुश्मनों के ख़िलाफ़ जोश दिलाती थीं।

इब्ने-हिशाम ने लिखा है कि नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद जब नबी (सल्ल०) की बेटी हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) मक्का से मदीना के सफ़र के लिए तैयार हुईं तो हिन्द (रज़ि०) उनके पास गईं और कहा—

> "ऐ बिन्ते-मुहम्मद! तुम अपने बाप के पास जा रही हो, अगर कुछ रास्ते के सामान की ज़रूरत हो तो बेझिझक कह दो, मैं पूरी कर दूँगी।"

इस रिवायत से मालूम होता है कि इस्लाम से दुश्मनी रखने के बावजूद उनमें उदारता की कमी नहीं थी। इस्लाम क़बूल करने के बाद ये ख़ूबियाँ और निखर गईं और उन्होंने अपनी पिछली ज़िन्दगी की कमी को अपने अच्छे किरदार से पूरा कर दिया।

हज़रत दुर्रा-बिन्ते-अबू-लहब (रज़ि०)

हसब व नसब के लिए इतना ही लिखना बहुत है कि वे नबी (सल्ल०) के चचा की बेटी थीं। बाप की इस्लाम-दुश्मनी का हाल यह था कि अल्लाह ने क़ुरआन मजीद में नाम लेकर उसकी निन्दा की, लेकिन बेटी को अल्लाह ने यह ख़ुशनसीबी दी कि वे ईमान लाईं और सहाबियात में शामिल हुईं।

उनका निकाह नबी (सल्ल०) के चचेरे भाई नौफ़ल-बिन-हारिस-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब के बेटे हारिस (रज़ि०) से हुआ। उनसे तीन बेटे पैदा हुए जिनके नाम उत्बा, वलीद और अबू-मुस्लिम हैं।

उनके शौहर और ससुर ने ख़न्दक़ की लड़ाई से पहले इस्लाम क़बूल किया। ससुर, नौफ़ल-बिन-हारिस (रज़ि०) ने हिजरत की खुशनसीबी भी हासिल की, लेकिन शौहर, हारिस-बिन-नौफ़ल (रज़ि०) हिजरत नहीं कर सके।

हज़रत दुर्रा (रज़ि०) के बारे में सीरत-निगारों ने लिखा है कि उन्होंने हिजरत की थी। अल्लामा इब्ने-असीर (रह०) लिखते हैं कि मदीना पहुँचकर वे हज़रत राफ़े-बिन-मुअल्ला ज़रक़ी (रज़ि०) के घर उतरीं। बनू-ज़ुरैक़ की औरतें उनसे मिलने आईं और कहा, "तुम उसी अबू-लहब की बेटी हो ना जिसके बारे में "तब्बत-यदा-अबी-लहब" नाज़िल हुई, तुमको हिजरत का क्या सवाब मिलेगा? हज़रत दुर्रा (रज़ि०) को यह सुनकर बहुत दुख हुआ और उन्होंने नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर यह बात बयान की। नबी (सल्ल०) ने उनको तसल्ली दी और कुछ देर ठहरने का हुक्म दिया। फिर ज़ुहर की नमाज़ पढ़कर आप (सल्ल०) ने लोगों से फ़रमाया—

> "लोगो! तुममें से कुछ लोग मेरे ख़ानदान के बारे में मेरे दिल को तकलीफ़ पहुँचाते हैं, हालाँकि ख़ुदा की क़सम मेरे रिश्तेदारों को मेरी शिफ़ाअत ज़रूर पहुँचेगी, यहाँ तक कि सद, हकम और सलहब (तीन क़बीले जिनसे नबी (सल्ल०) की दूर की रिश्तेदारी थी) इससे फ़ायदा हासिल करेंगे।"

हज़रत दुर्रा (रज़ि०) ने कई हदीसें रिवायत की हैं जिनमें दो मशहूर हदीसें ये हैं—

1. एक बार किसी ने नबी (सल्ल०) से पूछा, "लोगों में बेहतर कौन है?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिसमें तक़्वा

(अल्लाह का डर) ज़्यादा हो, जो लोगों को अच्छे काम का हुक्म देता हो, बुरे कामों से रोकता हो और 'सिला-रहमी' (अपने परिवार से प्रेम रखना और जहाँ तक हो सके उनकी मदद करना) करता हो।"

2. अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "किसी मुर्दा के अमल के बदले किसी ज़िन्दा को तकलीफ़ नहीं दी जा सकती।"

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने लिखा है कि दुर्रा (रज़ि०) बहुत उदार थीं और मुसलमानों को खाना खिलाया करती थीं।

हज़रत दुर्रा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उमैमा उम्मे-अबू-हुरैरा (रज़ि०)

नाम उमैमा था लेकिन आमतौर पर वे अपनी कुन्नियत उम्मे-अबू-हुरैरा से मशहूर हैं।

बाप का नाम सबीह या सफ़ीह-बिन-हारिस था। बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) की माँ थीं। उनका निकाह आमिर-बिन-अब्दे-ज़िश-शुरा दौसी से हुआ था। लेकिन उनके शौहर का इन्तिक़ाल जवानी में ही हो गया था। उस वक़्त हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) बहुत छोटे थे। माँ ने बड़ी मुश्किल हालात में उनकी परवरिश की। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले हज़रत तुफ़ैल-बिन-अम्र दौसी (रज़ि०) की दावत पर मुसलमान हो गए थे। लेकिन अभी तक नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होने का मौक़ा नहीं मिला था। यह ख़ुशनसीबी ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर नसीब हुई। माँ भी साथ थीं, लेकिन मदीना आने के बाद भी कुफ़्र और शिर्क की गुमराहियों में भटक रही थीं। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) माँ के

बड़े फ़रमाँबरदार थे लेकिन उनके शिर्क की वजह से दिल-ही-दिल में कुढ़ते रहते थे। उनकी तमन्ना थी कि माँ भी इस्लाम जैसी नेमत हासिल कर लें। माँ का इस्लाम से नफ़रत का यह हाल था कि एक दिन नबी (सल्ल०) की शान में कुछ नामुनासिब बातें कह दीं। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) को बहुत दुख हुआ। रोते हुए नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और बोले, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी माँ के लिए दुआ कीजिए कि अल्लाह उन्हें सच्चे दीन को क़बूल करने की तौफ़ीक़ दे दे।"

नबी (सल्ल०) ने दुआ की, "ऐ अल्लाह, अबू-हुरैरा की माँ को सीधा रास्ता दिखा!"

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) ख़ुश-ख़ुश घर आए तो देखा कि दरवाज़ा बन्द है और माँ ग़ुस्ल कर रहीं हैं। नहा-धोकर माँ ने दरवाज़ा खोला और बोलीं—

"ऐ बेटे! गवाह रहना कि मैं अल्लाह और उसके रसूल पर सच्चे दिल से ईमान लाती हूँ।"

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) यह सुनकर ख़ुशी से बेक़ाबू हो गए और ख़ुशी के आँसू बहाते हुए नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आए और बोले—

"ऐ अल्लाह के रसूल! ख़ुशख़बरी है कि आपकी दुआ क़बूल हो गई, अल्लाह ने मेरी माँ को इस्लाम क़बूल करने की तौफ़ीक़ दे दी है।"

नबी (सल्ल०) भी यह ख़बर सुनकर बहुत ख़ुश हुए और अल्लाह का शुक्र अदा किया।

हज़रत उमैमा (रज़ि०) बहुत ख़ुशक़िस्मत थीं कि अल्लाह ने उन्हें अबू-हुरैरा (रज़ि०) जैसा नेक बेटा दिया था। वे घर आते तो कहते—

"अस्सलामु-अलैकुम या अ-मताह व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू"

(आप पर सलामती हो ऐ माँ और अल्लाह की रहमतें व बरकतें हों!)

वे जवाब में कहतीं—

"व अलै-क या बुनय-य व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू"

(और तुमपर भी ऐ मेरे बेटे अल्लाह की रहमतें व बकरतें हों!)

फिर हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) कहते, "अल्लाह आपपर उसी तरह रहमत नाज़िल फ़रमाए जिस तरह आपने बचपन में मेरी परवरिश की।"

वे जवाब देतीं, "ऐ बेटे तुमपर भी उसी तरह रहमत नाज़िल फ़रमाए जिस तरह जवान होकर तुमने मुझसे सुलूक किया।"

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) को माँ से इतनी मुहब्बत थी कि जब तक वे ज़िन्दा रहीं, वे हज अदा करने नहीं गए।"

इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं।

हज़रत उमैमा-बिन्ते-ग़न्म (रज़ि०)

हज़रत उमैमा-बिन्ते-ग़नम, अमीनुल-उम्मत हज़रत अबू-उबैदा-बिन-जर्राह (रज़ि०)[1] की माँ थीं।

नसब का सिलसिला यह है: उमैमा-बिन्ते-ग़न्म-बिन-जाबिर-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बिन-आमिरा-बिन-उमैरा।

हज़रत उमैमा (रज़ि०) का निकाह अब्दुल्लाह-बिन-जर्राह फ़ह्री से हुआ। उनसे अबू-उबैदा (रज़ि०) पैदा हुए। अब्दुल्लाह-बिन-जर्राह ने इस्लाम क़बूल नहीं किया। लेकिन हज़रत उमैमा (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल किया और सहाबियात में शामिल हुईं, इस पर सीरत-निगारों का

1. ये भी उन दस खुशनसीब सहाबा में से थे जिन्हें उनकी ज़िन्दगी में ही नबी (सल्ल०) के द्वारा अल्लाह की ओर से जन्नती होने की खुशख़बरी मिल गई थी।

इत्तिफ़ाक़ है। उनके बेटे हज़रत अबू-उबैदा (रज़ि०) मशहूर और बुलन्द मर्तबेवाले सहाबी थे।

तबरानी की रिवायत के मुताबिक़ अब्दुल्लाह-बिन-जर्राह कुफ़्र की हालत में बद्र की लड़ाई में मारा गया और हज़रत अबू-उबैदा (रज़ि०) ने उसको क़त्ल किया।

लेकिन अल्लामा वाक़िदी ने इससे इनकार किया है। उन्होंने लिखा है कि वह नबी (सल्ल०) को नुबूवत मिलने से पहले ही मर चुका था।

सीरत-निगारों ने तबरानी की रिवायत को दुरुस्त माना है।

हज़रत उमैमा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात नहीं मिलते।

हज़रत हिन्द-बिन्ते-जाबिर (रज़ि०)

अमीनुल-उम्मत, सीरिया पर फ़तह हासिल करनेवाले हज़रत अबू-उबैदा-बिन-जर्राह (रज़ि०) की बीवी थीं। वे सादगी पसन्द और मुख़लिस सहाबिया थीं। उनकी कोख से हज़रत अबू-उबैदा (रज़ि०) के एक या दो लड़के पैदा हुए लेकिन नस्ल आगे नहीं चली। और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत आतिका-बिन्ते-औफ़ (रज़ि०)

हज़रत आतिका (रज़ि०) का ताल्लुक़ क़ुरैश के ख़ानदान बनू-ज़ुहरा से था। ये बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) की बहन थीं।

नसब का सिलसिला यह है : आतिका-बिन्ते-औफ़-बिन-अब्दे-औफ़-बिन-अब्द-बिन-हारिस-बिन-ज़ुहरा-बिन-किलाब-बिन-मुर्रा।

इनका निकाह मख़रमा-बिन-नौफ़ल से हुआ। दोनों के दादा एक थे। हज़रत आतिका (रज़ि०) इस्लाम के शुरू के दिनों में ही ईमान ले आईं

और उन्होंने हिजरत भी की। मशहूर सहाबी हज़रत मिसवर-बिन-मख़रमा हज़रत आतिका (रज़ि०) ही के बेटे हैं, वे सन् 2 हिजरी में मक्का में पैदा हुए और मक्का पर विजय प्राप्त होने के बाद छः साल की उम्र में मदीना आए। हज़रत आतिका (रज़ि०) उनको अक्सर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में भेजा करती थीं।

इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत सफ़वान-बिन-मुअत्तल (रज़ि०) की बीवी

नाम और नसब मालूम नहीं है। ये मशहूर सहाबी हज़रत सफ़वान-बिन-मुअत्तल (रज़ि०) की बीवी थीं। इमाम मालिक (रह०) ने मुअत्ता में लिखा है कि हज़रत सफ़वान (रज़ि०) ने ताइफ़ की लड़ाई के बाद इस्लाम क़बूल किया, लेकिन उनकी बीवी उनसे पहले इस्लाम क़बूल कर चुकी थीं। नबी (सल्ल०) ने उनका निकाह दोबारा नहीं पढ़ाया। वे नेक दिल सहाबिया थीं, अल्लाह की इबादत से उन्हें बेहद लगाव था। एक दिन नबी (सल्ल०) की मजलिस में हाज़िर हुईं और बोलीं—

"ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे शौहर सफ़वान-बिन-मुअत्तल नमाज़ पढ़ने की वजह से मुझपर सख़्ती करते हैं, जब मैं रोज़ा रखती हूँ तो मेरा रोज़ा तुड़वा देते हैं और ख़ुद दिन चढ़े नमाज़ पढ़ते हैं।"

इत्तिफ़ाक़ से उस वक़्त नबी (सल्ल०) की मजलिस में हज़रत सफ़वान (रज़ि०) भी हाज़िर थे।

नबी (सल्ल०) ने उनसे सच्चाई पूछी तो उन्होंने कहा—

"ऐ अल्लाह के रसूल! ये नमाज़ में दो लम्बी-लम्बी सूरतें पढ़ती हैं और मैं इन्हें इससे मना करता हूँ।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक सूरत पढ़ना भी काफ़ी है।"

सफ़वान (रज़ि०) ने फिर कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! ये कहती हैं कि मैं इनका रोज़ा तुड़वा देता हूँ, तो सच्चाई यह है कि जब ये नफ़्ल

रोज़े रखने पर आती हैं तो रखती ही चली जाती हैं। मेरे लिए यह बात तकलीफ़ देनेवाली होती है।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ किसी औरत को शौहर की इजाज़त के बग़ैर इस तरह नफ़्ल रोज़े नहीं रखने चाहिएँ।"

फिर सफ़वान (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे दिन चढ़े नमाज़ की बात दुरुस्त है, इसकी वजह यह है कि हम मेहनत-मज़दूरी करनेवाले लोग हैं और हमारे ख़ानदान के लोगों में यह आदत ज़माने से चली आ रही है कि वे सूरज निकलने से पहले नहीं उठते।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अच्छा सफ़वान, जब उठो तो नमाज़ ज़रूर पढ़ लिया करो।"

हज़रत सफ़वान-बिन-मुअत्तल (रज़ि०) की बीवी के इससे ज़्यादा हालात नहीं मिलते।

हज़रत उम्मे-मिहजन (रज़ि०)

नाम और नसब मालूम नहीं है। सिर्फ़ इतना मालूम है कि वे मस्जिदे-नबवी में झाड़ू लगाने का काम करती थीं, इसलिए नबी (सल्ल०) की नज़रों में इनकी बड़ी क़द्र-क़ीमत थी।

जब इनका इन्तिक़ाल हुआ तो सहाबियों ने नबी (सल्ल०) को ख़बर दिए बग़ैर इनको दफ़न कर दिया। बाद में नबी (सल्ल०) को मालूम हुआ तो आप (सल्ल०) ने पूछा, "मुझे ख़बर क्यों नहीं की?"

सहाबियों ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप रोज़े से थे और आराम फ़रमा रहे थे, इसलिए हमने तकलीफ़ देना मुनासिब नहीं समझा।"

इससे ज़्यादा हालात किताबों में नहीं मिलते।

हज़रत ख़ौला-बिन्ते-हकीम (रज़ि०)

नाम ख़ौला था और उम्मे-शरीक कुन्नियत। क़बीला बनू-सुलैम से थीं।

नसब-नामा यह है: ख़ौला-बिन्ते-हकीम-बिन-उमैया-बिन-हारिसा-बिन-औक़स-बिन-मुर्रा-बिन-हिलाल-बिन-फ़ालिज-बिन-ज़कवान-बिन-सअलबा-बिन-बहसा-बिन-सुलैम।

इनका निकाह बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अबू-साइब उसमान-बिन-मज़ऊन जमही से हुआ। सन् 13 नबवी में अपने शौहर के साथ मदीना की तरफ़ हिजरत की ख़ुशनसीबी हासिल की।

हज़रत उसमान-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) को अल्लाह की इबादत से बड़ा लगाव था। रात-रात भर नमाज़ें पढ़ते और दिन को अक्सर रोज़े से रहते। इबादत के शौक़ में वे अपने बीवी-बच्चों की भी परवाह नहीं करते थे। एक दिन ख़ौला (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों से मिलने गईं तो अजीब हाल में थीं और हर तरह के बनाव-शृंगार से ख़ाली थीं। नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों ने उन्हें इस हाल में देखकर पूछा कि एक शादी-शुदा औरत होते हुए भी तुमने अपनी हालत ऐसी क्यों बना रखी है, हालाँकि तुम्हारे शौहर क़ुरैश के ख़ुशहाल लोगों में हैं?"

हज़रत ख़ौला (रज़ि०) ने इशारे में कहा, "उन्हें अपनी बीवी-बच्चों की क्या परवाह! वे तो रातभर नमाज़ें पढ़ा करते हैं और दिनभर रोज़ा रखते हैं।"

नबी (सल्ल०) की पाक बीवियाँ सच्चाई को समझ गईं। नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए तो बातों-बातों में इस बात की चर्चा की। नबी (सल्ल०) उसी वक़्त ख़ुद हज़रत उसमान-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) के पास

तशरीफ़ ले गए और फ़रमाया, "उसमान क्या तुम्हारे लिए मेरी ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा पैरवी के लायक़ नहीं है?"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान, बेशक आपकी पाक हस्ती ही मेरे लिए नमूना है। मुझसे क्या ग़लती हुई?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसमान हमारे लिए रहबानियत (संन्यास) का हुक्म नहीं है, मैं तुमसे ज़्यादा अल्लाह से डरता हूँ, नमाज़ें भी पढ़ता हूँ, रोज़े भी रखता हूँ और घरवालों के हक़ भी अदा करता हूँ। तुमपर तुम्हारी आँख, जिस्म और बाल-बच्चों सबका हक़ है। नमाज़ें पढ़ो, रोज़े रखो लेकिन बाल-बच्चों का हक़ भी अदा करो।"

हज़रत उसमान (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की बात का मतलब समझ गए। इसके कुछ दिनों के बाद हज़रत ख़ौला (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों के पास आईं तो उनकी हालत दुल्हन जैसी थी (अच्छे कपड़ों में थीं और ख़ुशबू लगाए हुए थीं)। यह इब्ने-साद (रह०) का बयान है।

मुसनद अहमद में है कि हज़रत ख़ौला (रज़ि०) हज़रत आइशा (रज़ि०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं थीं और उन्होंने ही नबी (सल्ल०) से उनकी चर्चा की थी।

बद्र की लड़ाई के बाद सन् 2 हिजरी में हज़रत उसमान-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ और अपने पीछे हज़रत ख़ौला (रज़ि०) और दो बेटे अब्दुर्रहमान (रज़ि०) और साइब (रज़ि०) छोड़े। उनके बाद हज़रत ख़ौला (रज़ि०) ने सारी ज़िन्दगी बेवगी (विधवापन) में ही गुज़ार दी, दूसरा निकाह नहीं किया। सहीह बुख़ारी में है कि उन्होंने एक बार नबी (सल्ल०) से निकाह करने की ख़ाहिश की थी, लेकिन नबी (सल्ल०) ने किसी वजह से मंज़ूर नहीं किया।

हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने लिखा है कि एक बार ख़ौला (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! अगर ताइफ़ पर फ़तह हासिल हो तो बादिया-बिन्ते-ग़ैलान या फ़ारिआ-बिन्ते-अक़ील का ज़ेवर मुझे दीजिएगा।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर अल्लाह इसकी इजाज़त न दे तो मैं क्या करूँ?"

कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि शौहर के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत ख़ौला (रज़ि०) परेशान रहा करती थीं लेकिन उसके बावजूद नमाज़, रोज़े से बेहद लगाव था। इमाम अहमद-बिन-हम्बल (रह०) कहते हैं कि वे रातभर इबादत करती थीं और दिनभर रोज़ा रखती थीं।

हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने लिखा है कि वे एक नेक और मुहतरम ख़ातून थीं। एक रिवायत से मालूम होता है कि उन्हें शायरी से भी दिलचस्पी थी। हाफ़िज़ अबू-नुऐम (रह०) ने बयान किया है कि उनके शौहर हज़रत उसमान-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ तो उन्होंने अपना दुख इन अशआर में ज़ाहिर किया।

"ऐ आँख लगातार आँसू बहा,
उसमान-बिन-मज़ऊन की मुसीबत (इन्तिक़ाल) पर
उस शख़्स पर आँसू बहा, जिसने अपने ख़ालिक़ की
रज़ामन्दी के लिए सारी रात गुज़ार दी,
ख़ुशख़बरी है उस शख़्स के लिए जो
छुप गया और दफ़न कर दिया गया,
बक़ीअ़ और उसके ग़रक़द के पेड़, उसका क्या अच्छा ठिकाना है!
और इसके बाद उसकी ज़मीन आज़माइशों से भर गई
और दिल में जो ग़म बैठ गया है
वह मरते दम तक ख़त्म नहीं होगा

और इस दिल की रोनेवाली रगें हमेशा रोती रहेंगी।"

हज़रत ख़ौला-बिन्ते-हकीम (रज़ि०) ने पन्द्रह हदीसें रिवायत की हैं। उनके रावियों में साद-बिन-अबू-वक़्क़ास (रज़ि०), हज़रत सईद-बिन-मुसय्यिब (रह०) और हज़रत उरवा-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) जैसे बुलन्द मर्तबे के लोग शामिल हैं।

हज़रत हमना-बिन्ते-जह्श (रज़ि०)

हज़रत हमना (रज़ि०) का ताल्लुक़ क़ुरैश के ख़ानदान असद-बिन-ख़ुज़ैमा से था।

नसब का सिलसिला यह है : हमना-बिन्ते-जह्श-बिन-रिआब-बिन-यामुर-बिन-सबिरह-बिन-मुर्रा-बिन-कसीर-बिन-ग़न्म-बिन-दूदान-बिन-असद-बिन-ख़ुज़ैमा।

माँ का नाम उमैमा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब था, जो नबी (सल्ल०) की सगी फूफी थीं। इस तरह हमना-बिन्ते-जह्श (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की फुफेरी बहन थीं। उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जह्श (रज़ि०) उनकी सगी बहन और अब्दुल्लाह-बिन-जह्श (शहीदे-उहुद) (रज़ि०) उनके सगे भाई थे। नुबूवत के शुरू के ज़माने में ही इस्लाम क़बूल कर लिया था। इनका निकाह बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि०) से हुआ था। अपने शौहर के साथ मक्का से हिजरत करके मदीना आईं और मुहाजिरों और अंसारियों की कुछ दूसरी औरतों के साथ मिलकर नबी (सल्ल०) से बैअत (हाथ पर आज्ञापालन का वादा लेना) की ख़ुशनसीबी हासिल की। सन् 3 हिजरी में उहुद की लड़ाई हुई। इस लड़ाई में हज़रत हमना (रज़ि०) ने दूसरी औरतों के साथ मिलकर मुजाहिदों की बहुत ख़िदमत की। वे मुजाहिदों को पानी पिलातीं, ज़ख़्मियों का इलाज और उनकी देखभाल करतीं। इसी लड़ाई में उनके शौहर बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हुए। हज़रत हमना (रज़ि०) को उनसे बहुत मुहब्बत थी। जब उनकी शहादत की ख़बर सुनी तो

बेइख़्तियार चीख़ पड़ीं। इसी लड़ाई में उनके भाई अब्दुल्लाह-बिन-जह्श (रज़ि०) भी शहीद हुए और मुशरिकों ने उनकी लाश के नाक, कान, होंठ काट डाले।

हज़रत मुसअब (रज़ि०) से हज़रत हमना (रज़ि०) की सिर्फ़ एक लड़की ज़ैनब (रज़ि०) पैदा हुईं। उसके बाद हज़रत हमना (रज़ि०) का निकाह हज़रत तलहा-बिन-उबैदुल्लाह (रज़ि०) से हुआ, जो 'अशरा-मुबश्शरा' यानी उन दस ख़ुशनसीब सहाबियों में एक हैं जिन्हें नबी (सल्ल०) ने इस दुनिया में ही जन्नती होने की ख़ुशख़बरी दे दी थी। उनसे हज़रत हमना (रज़ि०) के दो बेटे मुहम्मद (रज़ि०) और इमरान (रज़ि०) पैदा हुए।

इफ़्क़ की घटना में हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि०) और हज़रत मिसतह (रज़ि०) के साथ हमना (रज़ि०) भी मुनाफ़िक़ों के धोखे में आ गईं और उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) पर लगाई गई तुहमत (लांछन) की ताईद की। जब अल्लाह ने हज़रत आइशा (रज़ि०) की पाकदामनी का एलान कर दिया तो हज़रत हमना (रज़ि०) अपनी इस करनी पर बहुत पछताईं और तौबा की। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि०) को इस बात का हमेशा दुख रहा।

हज़रत हमना (रज़ि०) का इन्तिक़ाल 20 हिजरी के बाद किसी साल हुआ। उनसे कुछ हदीसें भी रिवायत की गई हैं। उनसे रिवायत करनेवाले उनके बेटे इमरान-बिन-तलहा (रज़ि०) हैं।

हज़रत अरवा-बिन्ते-कुरैज़ (रज़ि०)

हज़रत अरवा-बिन्ते-कुरैज़ का ताल्लुक़ बनू-अब्दे-शम्स से था।

नसब का सिलसिला यह है : अरवा-बिन्ते-कुरैज़-बिन-रबीआ-बिन-हबीब-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-मनाफ़-बिन-क़ुसय्य।

हज़रत अरवा की माँ उम्मे-हकीम अल-बैज़ा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब, नबी (सल्ल०) की सगी फूफी थीं। इस तरह हज़रत अरवा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की फुफेरी बहन थीं।

हज़रत अरवा (रज़ि०) की पहली शादी अफ़्फ़ान-बिन-अबिल-आस-बिन-उमैया-बिन-अब्दे-शम्स से हुई। इनसे ज़ुन-नूरैन हज़रत उसमान-बिन-अफ़्फ़ान (रज़ि०) और एक लड़की आमिना पैदा हुईं।

जब अफ़्फ़ान का इन्तिक़ाल हो गया तब हज़रत अरवा (रज़ि०) का निकाह उक़्बा-बिन-अबू-मुईत से हुआ। उससे एक बेटी उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) पैदा हुईं, जो कि मशहूर सहाबिया हैं।

उक़्बा-बिन-अबू-मुईत क़ुरैश के सरदारों में से था। जब नबी (सल्ल०) ने इस्लाम की दावत शुरू की तो वह आप (सल्ल०) का कट्टर दुश्मन बन गया और आप (सल्ल०) को सताने में कोई कसर न उठा रखी। हज़रत अरवा (रज़ि०) को अल्लाह ने इस्लाम क़बूल करने की तौफ़ीक़ दी और वे हिजरत से पहले ही ईमान ले आईं।

अल्लामा इब्ने-साद (रह०) का बयान हैं—

> "अरवा (रज़ि०) इस्लाम लाईं और अपनी लड़की उम्मे-कुलसूम-बिन्ते-उक़्बा (रज़ि०) के बाद हिजरत की। उन्होंने नबी (सल्ल०) से बैअत की और हमेशा मदीना में रहीं। उनका इन्तिक़ाल उनके बेटे उसमान-बिन-अफ़्फ़ान (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में हुआ।"

कुछ रिवायतों में है कि हज़रत अरवा (रज़ि०) ने नुबूवत के शुरू के तीन सालों के अन्दर ही इस्लाम क़बूल कर लिया था। उनके बेटे हज़रत उसमान भी उसी ज़माने में ईमान लाए।

हज़रत अरवा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत सुअ्दा-बिन्ते-कुरैज़ (रज़ि०)

हज़रत सुअ्दा (रज़ि०), हज़रत अरवा-बिन्ते-कुरैज़ (रज़ि०) की बहन थीं। जाहिलियत के ज़माने में उन्हें 'कहानत' (ज्योतिष विद्या) से बड़ा लगाव था और वे उसमें काफ़ी माहिर थीं। शेर और शायरी में भी काफ़ी दिलचस्पी रखती थीं। हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) और दूसरे सीरत-निगारों ने अपनी किताबों में उनके बहुत-से शेर लिखे हैं। उनके इस्लाम क़बूल करने के ज़माने के बारे में यक़ीनी तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता लेकिन कुछ रिवायतों से पता चलता है कि वे इस्लाम के शुरू के ज़माने में ही ईमान ले आई थीं। हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने लिखा है कि उन्होंने ही सबसे पहले अपने भांजे हज़रत उसमान (रज़ि०) को इस्लाम की दावत दी और उन्हें मुख़ातब करके ये अशआर कहे—

उसमान! ऐ उसमान! ऐ उसमान!
तुम साहिबे-जमाल और साहिबे-शान हो,
ये नबी साहिबे-बुरहान हैं,
वे सच्चे रसूल हैं,
उनपर क़ुरआन नाज़िल हुआ है,
उनकी पैरवी करो और बुतों के धोखे में न आओ।

ये अशआर सुनाकर उन्होंने हज़रत उसमान (रज़ि०) से कहा, "भांजे! बेशक मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह अल्लाह के रसूल हैं, क़ुरआन उनपर नाज़िल हुआ है और वे अल्लाह की तरफ़ बुलाते हैं। उनकी हिदायत ही अस्ल हिदायत है और उनका दीन कामयाबी का ज़रिआ है।

हज़रत उसमान (रज़ि०) पर ख़ाला की बातों का बहुत असर हुआ और उन्होंने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से इसकी चर्चा की। उन्होंने फ़रमाया, "ख़ुदा की क़सम! जो कुछ तुम्हारी ख़ाला ने कहा, वह सच है।" इसके बाद हज़रत उसमान (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल कर लिया।

हज़रत सुअ्दा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात नहीं मिलते, लेकिन उनके इस्लाम क़बूल करने और सहाबियात में शामिल होने पर सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है।

हज़रत हाला-बिन्ते-ख़ुवैलिद (रज़ि०)

हज़रत हाला (रज़ि०) उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की सगी बहन थीं।

नसब का सिलसिला यह है : हाला-बिन्ते-ख़ुवैलिद-बिन-असद-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बिन-क़ुसय्य।

सीरत-निगारों का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि हज़रत हाला (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल किया और हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद तक ज़िन्दा रहीं।

हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने लिखा है कि एक बार वे नबी (सल्ल०) से मिलने के लिए मक्का से मदीना गईं। नबी (सल्ल०) के दरवाज़े पर पहुँचकर अन्दर आने की इजाज़त माँगी। उनकी आवाज़ उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से मिलती थी। नबी (सल्ल०) ने आवाज़ सुनी तो आप (सल्ल०) को हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) याद आ गईं और आप (सल्ल०) ने हज़रत आइशा (रज़ि०) से फ़रमाया, "ख़दीजा की बहन हाला होंगी।" फिर वे अन्दर आईं तो नबी (सल्ल०) बड़ी इज़्ज़त से पेश आए और उनकी ख़ातिरदारी की।

हज़रत हाला (रज़ि०) का निकाह रबीअ-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-मनाफ़-बिन-क़ुसय्य से हुआ था। उनसे एक बेटे अबुल-आस (रज़ि०) पैदा हुए, जिनसे नबी (सल्ल०) की बेटी हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की शादी हुई थी। इस तरह हज़रत हाला (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) की समधन बनने की ख़ुशक़िस्मती भी हासिल हुई।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) अपने भांजे, हज़रत अबुल-आस (रज़ि०) से बहुत मुहब्बत करती थीं और उनको अपना बेटा समझती थीं।

हज़रत हाला (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत जस्सामा (हस्साना) मुज़नीया (रज़ि०)

हज़रत जस्सामा का ताल्लुक़ बनू-मुज़नीया से था। वे नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ईमान लाईं। वे अक्सर हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से मिलने आया करती थीं। इमाम बुख़ारी के हवाले से कन्ज़ुल-उम्माल में लिखा गया है कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के कई साल बाद वे एक बार मदीना आईं और नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। बहुत बूढ़ी हो चुकी थीं इसलिए नबी (सल्ल०) पहली नज़र में उनको पहचान न सके और पूछा, "आप कौन हैं?" उन्होंने कहा, "मैं जस्सामा मुज़नीया हूँ।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बल्कि आप हस्साना मुज़नीया हैं।" फिर नबी (सल्ल०) ने पूछा, "आप लोग किस हाल में हैं, हमारे बाद आप कैसे रहे?"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, हम ख़ैरियत और सुकून से रहे।" जब वे चली गईं तो उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इस बुढ़िया की आपने बहुत ख़ातिर की।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ये बूढ़ी औरत हमारे पास ख़दीजा (रज़ि०) के ज़माने में आया करती थीं और पुराने मिलनेवालों से अच्छी तरह मिलना भी ईमान की निशानी है।"

मुसनद बैहक़ी में यही रिवायत हज़रत आइशा (रज़ि०) से इस तरह रिवायत की गई है कि एक बुढ़िया नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आया करती थी, आप (सल्ल०) उसको देखकर बहुत खुश होते थे और उससे

बड़ी इज़्ज़त से पेश आते थे। मैंने एक दिन पूछा, "मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, आप तो इस बुढ़िया की इतनी ख़ातिर करते हैं जैसी कि किसी और की नहीं करते।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ये बूढ़ी औरत ख़दीजा (रज़ि०) के ज़माने से हमारे पास आया करती थीं, और क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मुहब्बत की क़द्र करना भी ईमान की निशानी है।"

हज़रत जस्सामा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात किसी किताब में नहीं मिलते।

हज़रत उम्मे-कुलसूम-बिन्ते-उक़्बा (रज़ि०)

असली नाम मालूम नहीं, अपनी कुन्नियत "उम्मे-कुलसूम" ही से मशहूर हैं। क़ुरैश के ख़ानदान बनू-अब्दे-शम्स से ताल्लुक़ रखती थीं।

उनके नसब का सिलसिला यह है : उम्मे-कुलसूम-बिन्ते-उक़्बा-बिन-अबू-मुईत-बिन-अबू-अम्र-बिन-उमैया-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-मनाफ़-बिन-क़ुसय्य।

माँ का नाम अरवा-बिन्ते-कुरैज़ (रज़ि०) था। उनका पहला निकाह अफ़्फ़ान-बिन-अबिल-आस से हुआ, उनसे उनके बेटे हज़रत उसमान (रज़ि०) पैदा हुए। अफ़्फ़ान के इन्तिक़ाल के बाद अरवा (रज़ि०) का निकाह उक़्बा-बिन-अबू-मुईत से हुआ, उससे हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) पैदा हुईं। इस तरह हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) हज़रत उसमान (रज़ि०) की माँ-शरीक बहन थीं। उक़्बा-बिन-अबू-मुईत इस्लाम का कट्टर दुश्मन था। लेकिन हज़रत अरवा (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) भली और नेक दिल औरतें थीं। उन्होंने बड़े सख़्त हालात में इस्लाम क़बूल किया और उक़्बा-बिन-अबू-मुईत की दुश्मनी की कोई परवाह न की।

जब नबी (सल्ल०) और दूसरे मुसलमानों ने मक्का से मदीना की तरफ़ हिजरत की तो हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) का दिल भी हिजरत के लिए तड़प उठा। लेकिन अभी कुँवारी थीं। बाप और भाई वलीद और अम्मारा कड़ी निगरानी में रखते थे, इसलिए उन्हें बहुत दिनों तक हिजरत का मौक़ा न मिल सका। जब बद्र की लड़ाई में उक़्बा-बिन-अबू-मुईत हज़रत आसिम-बिन-साबित (रज़ि०) के हाथों मारा गया तो भाइयों ने उनकी पहरेदारी और सख़्त कर दी। वे अक्सर नबी (सल्ल०) और इस्लाम के बारे में अनाप-शनाप भी बका करते थे। हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) उनकी बातें सुनतीं तो तड़पकर रह जातीं। औरत थीं, कुछ और तो कर नहीं सकती थीं, बस हर वक़्त यह दुआ करती थीं कि अल्लाह उन्हें इस गन्दे माहौल से छुटकारा दे और वे किसी तरह नबी (सल्ल०) के पास जा पहुँचें।

इत्तिफ़ाक़ से हुदैबिया के समझौते के बाद उन्हें घर से निकलने का मौक़ा मिल गया और वे बनू-खुज़ाआ के एक शरीफ़ आदमी के साथ पैदल ही मदीना की तरफ़ चल पड़ीं और रात-दिन सफ़र करते हुए नबी (सल्ल०) के पास मदीना पहुँच गईं। जब घरवालों को उनके निकल जाने का पता चला तो वे सिर पकड़कर बैठ गए। उनके दो भाई वलीद-बिन-उक़्बा और उमारा-बिन-उक़्बा ग़ुस्से में भड़क उठे और बहन को वापस लाने के लिए घर से निकल पड़े। ख़ुशक़िस्मती से हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) उन्हें रास्ते में न मिल सकीं। दोनों भाई सीधे मदीना पहुँचे और नबी (सल्ल०) से माँग की कि हुदैबिया के समझौते की इस शर्त को पूरा कीजिए कि क़ुरैश का कोई आदमी मदीना आएगा तो वापस कर दिया जाएगा।

उधर हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से फ़रियाद की, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे अपनी चौखट से न धुतकारिए, मैं एक कमज़ोर औरत हूँ और मुशरिकों में जाकर मेरा ईमान ख़तरे में पड़

जाएगा।" नबी (सल्ल०) को बहुत फ़िक्र हुई क्योंकि समझौते में औरतों की कहीं चर्चा नहीं थी। उसी वक़्त नबी (सल्ल०) पर ये आयतें उतरीं–

"ऐ मोमिनो! जब तुम्हारे पास मुसलमान औरतें हिजरत करके आएँ तो उनको जाँच लो, अल्लाह उनके ईमान को अच्छी तरह जानता है। अगर तुमको मालूम हो कि वे ईमान पर हैं तो उनको इस्लाम-दुश्मनों के हवाले न करो।"

(क़ुरआन, सूरा-60, मुम्तहिना, आयत-10)

नबी (सल्ल०) ने अल्लाह के इस हुक्म के मुताबिक़ हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) को वापस करने से इनकार कर दिया और उनके भाई हाथ मलते मक्का वापस गए।

फिर नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) की शादी अपने जाँनिसार हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) से कर दी। हज़रत ज़ैद (रज़ि०) मुअता की लड़ाई में शहीद हुए तो उनका निकाह हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम (रज़ि०) से हुआ, लेकिन उनके स्वभाव में सख़्ती थी, इसलिए निबाह न हो सका और तलाक़ तक बात पहुँच गई। फिर उनका निकाह हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) से हुआ। हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि०) के निकाह में आईं। इस निकाह के एक महीने के बाद ही हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हो गया। उस वक़्त हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि०) मिस्र के हाकिम थे।

हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) को हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) और हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि०) से कोई औलाद नहीं हुई। हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) से एक लड़की ज़ैनब और हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) से चार लड़के इबराहीम, हुमैद, मुहम्मद और इसमाईल पैदा हुए।

हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) से कुछ हदीसें भी रिवायत की गई हैं। इनसे रिवायत करनेवालों में इबराहीम-बिन-अब्दुर्रहमान (रज़ि०), हुमैद-बिन-अब्दुर्रहमान (रज़ि०) और हुमैद-बिन-नाफ़े (रह०) शामिल हैं।

हज़रत उम्मे-ख़ालिद-बिन्ते-ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०)

ख़ैबर की लड़ाई के बाद का वाक़िआ है, एक दिन नबी (सल्ल०) के पास तोहफ़े में एक फूलोंवाली काली चादर आई। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह चादर किसको दूँ?" लोग चुप रहे। उनकी ख़ामोशी का मतलब यह था कि नबी (सल्ल०) जिसे चाहें वह चादर दे दें। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उम्मे-ख़ालिद को बुलाओ।" एक साहब दौड़े गए और हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) को बताया कि नबी (सल्ल०) उनको याद कर रहे हैं। वे फ़ौरन नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। नबी (सल्ल०) ने बड़ी मुहब्बत से वह चादर उन्हें दी और साथ ही दो बार फ़रमाया, "पहनो और पुरानी करो।"

फिर नबी (सल्ल०) चादर के फूलों पर हाथ रखकर हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) को दिखाते और फ़रमाते, "उम्मे-ख़ालिद! देखो यह सनह है, यह सनह है।" हबशी भाषा में 'सनह' ख़ूबसूरत को कहते हैं। उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) हबशी भाषा जानती थीं। वे नबी (सल्ल०) के मुबारक मुँह से यह सुनकर ख़ुशी से खिली जाती थीं।

ये उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) जिनपर नबी (सल्ल०) इतने मेहरबान थे, बुलन्द मर्तबेवाले सहाबी ख़ालिद-बिन-सईद-बिन-आस (रज़ि०) की बेटी थीं।

हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) का असली नाम अमा था। वे क़ुरैश के मशहूर ख़ानदान बनू-उमैया से थीं।

नसब का सिलसिला यह है : उम्मे-ख़ालिद अमा-बिन्ते-ख़ालिद-बिन-सईद-बिन-आस-बिन-उमैया-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-मनाफ़-बिन-क़ुसय्य।

माँ का नाम उमैना (रज़ि०) या हुमैना-बिन्ते-ख़लफ़-बिन-असअद-बिन-आमिर था। उनका ताल्लुक़ बनू-ख़ुज़ाआ से था। हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) के माँ-बाप दोनों इस्लाम के शुरू के ज़माने में ही ईमान ले आए थे और उन्होंने दूसरे साबिक़ूनल-अव्वलून, यानी शुरू के ज़माने में इस्लाम क़बूल करनेवाले मुसलमानों की तरह सच्चे दीन की राह में बड़ी मुसीबतें झेलीं। सन् 5 नबवी में नबी (सल्ल०) ने सहाबियों को काफ़िरों के ज़ुल्म से बचने के लिए हबशा चले जाने की सलाह दी, तो कुछ सहाबी उसी साल हिजरत करके हबशा चले गए।

अगले साल सन् 6 नबवी में मज़लूम सहाबियों के एक बड़े क़ाफ़िले ने हबशा की तरफ़ हिजरत की। उस क़ाफ़िले में हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद-बिन-आस (रज़ि०) और उनके भाई हज़रत अम्र-बिन-सईद-बिन-आस (रज़ि०) भी शामिल थे। उनके साथ उनकी बीवियाँ उमैना (रज़ि०) और फ़ातिमा-बिन्ते-सफ़वान (रज़ि०) भी थीं। हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०) ख़ैबर की लड़ाई तक हबशा में ही रहे। इसी दौरान हज़रत उम्मे-ख़ालिद अमा (रज़ि०) की पैदाइश हुई। उन्होंने जिस घराने में आँखें खोलीं, वह पहले से ही इस्लाम की शीतल छाया में था, वे पैदाइशी मुसलमान थीं। अल्लामा इब्ने-असीर (रह०) का बयान है कि हज़रत उम्मे-ख़ालिद के एक भाई भी हबशा में पैदा हुए। उनका नाम सईद (रज़ि०) था। दोनों बहन-भाई को सहाबियों में शामिल होने की ख़ुशनसीबी हासिल हुई। हज़रत सईद (रज़ि०) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में सीरिया की एक लड़ाई में अपने बाप के सामने शहीद हुए।

हबशा के मुहाजिरों में कुछ लोग तो नबी (सल्ल०) की मदीना हिजरत से पहले मक्का वापस आ गए, लेकिन ज़्यादातर लोग हबशा में ही रहे और ख़ैबर की लड़ाई के मौक़े पर जाफ़र-बिन-अबू-तालिब (रज़ि०) के साथ मदीना वापस आए। हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि०), उनकी बीवी-बच्चे और घर के दूसरे लोग भी इन्हीं लोगों में शामिल थे।

हज़रत उम्मे-ख़ालिद उस वक़्त समझदार हो चुकी थीं, जब वे लोग हबशा से चलने लगे तो हबशा के बादशाह नज्जाशी ने बड़े अक़ीदत से उनको पैग़ाम दिया कि तुम सब नबी (सल्ल०) को मेरा सलाम पहुँचा देना।

हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) फ़रमाया करती थीं कि मैं भी उन लोगों में शामिल थी, जिन्हें हबशा के बादशाह ने नबी (सल्ल०) के लिए सलाम का पैग़ाम दिया था। चुनाँचे मैंने भी दूसरे मुसलमानों के साथ नबी (सल्ल०) को नज्जाशी का सलाम पहुँचाया था।

मदीना आने के बाद हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) का निकाह नबी (सल्ल०) के फुफेरे भाई हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम (रज़ि०) से हुआ। उनसे दो बेटे ख़ालिद और उमर और तीन बेटियाँ हबीबा, सौदा और हिन्द पैदा हुईं।

नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) से बड़ी मुहब्बत करते थे। एक बार वे अपने बाप के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं। उन्होंने लाल रंग का कुर्ता पहन रखा था। नबी (सल्ल०) ने उन्हें देखकर बड़ी मुहब्बत से फ़रमाया, "सनह, सनह!" (बहुत ख़ूबसूरत! बहुत ख़ूबसूरत!)। हबशी भाषा के ये शब्द नबी (सल्ल०) ने उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) को ख़ुश करने के लिए कहे थे। इसी तरह एक और मौक़े पर नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) को ख़ासतौर पर बुलाकर एक ख़ूबसूरत चादर दी और उस वक़्त भी उनको ख़ुश करने के लिए यही अलफ़ाज़ कहे।

हज़रत उम्मे-ख़ालिद (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल मालूम नहीं है। उनसे कुछ हदीसें रिवायत की गई हैं। उनसे रिवायत करनेवालों में कुरैब-बिन-सुलैमान किन्दी (रज़ि०), मूसा-बिन-उक़्बा (रह०) और इबराहीम-बिन-उक़्बा (रह०) वग़ैरा शामिल हैं।

हज़रत उम्मे-वरक़ा-बिन्ते-नौफ़ल अंसारिया (रज़ि०)

असली नाम मालूम नहीं है। बाप का नाम अब्दुल्लाह था और दादा का नौफ़ल। इसलिए लोग उन्हें उम्मे-वरक़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह और उम्मे-वरक़ा-बिन्ते-नौफ़ल दोनों कहा करते थे।

नसब का सिलसिला यह है : उम्मे-वरक़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह-बिन-हारिस-बिन-उवैमिर-बिन-नौफ़ल।

नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद इस्लाम क़बूल किया और नबी (सल्ल०) से बैअत की। उसके बाद बड़े शौक़ और लगन से नबी (सल्ल०) से क़ुरआन की तालीम हासिल की। इब्ने-असीर (रह०) का बयान है कि उन्होंने पूरा क़ुरआन हिफ़्ज़ (ज़बानी याद) कर लिया था। बद्र की लड़ाई की तैयारी होने लगी तो उन्होंने नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की, "मुझे भी लड़ाई में साथ चलने की इजाज़त दीजिए। मैं घायलों और बीमारों की देखभाल और ख़िदमत करूँगी। शायद अल्लाह मुझे भी इस्लाम की राह में शहीद होने की ख़ुशक़िस्मती बख़्श दे।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम यहीं घर में ही रहो, अल्लाह तुम्हें यहीं शहादत नसीब करेगा।"

उन्होंने नबी (सल्ल०) के हुक्म का पालन किया और लड़ाई पर जाने का इरादा छोड़ दिया।

उन्हें इबादत से बड़ा लगाव था चूँकि वे क़ुरआन भी पढ़ी हुई थीं, इसलिए नबी (सल्ल०) ने उन्हें औरतों का इमाम बना दिया था। उन्होंने अपने मकान को मस्जिद बना लिया था, जहाँ वे औरतों की इमामत किया करती थीं। नबी (सल्ल०) ने उनकी दरख़ास्त पर एक मुअज़्ज़िन भी मुक़र्रर कर दिया था, जिनकी आवाज़ सुनकर औरतें जमाअत से

नमाज़ अदा करने के लिए हज़रत उम्मे-वरक़ा (रज़ि०) के घर आ जाती थीं।

अल्लामा इब्ने-असीर (रह०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) उनपर बहुत मेहरबान थे। कभी-कभी कुछ सहाबियों के साथ उनके घर तशरीफ़ ले जाते थे और फ़रमाया करते थे, "आओ! शहीदा के घर चलें।"

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) का बयान है कि हज़रत उम्मे-वरक़ा (रज़ि०) ने अपने एक ग़ुलाम और एक लौंडी से वादा किया कि मेरे मरने के बाद तुम आज़ाद हो।

उन बदनसीबों ने जल्द आज़ाद होने के चक्कर में एक रात चादर से उनका गला घोंट दिया। सुबह को हज़रत उमर (रज़ि०) ने लोगों से कहा, "आज ख़ाला उम्मे-वरक़ा के क़ुरआन पढ़ने की आवाज़ नहीं आती, पता नहीं उनका क्या हाल है?"

इसके बाद हज़रत उमर (रज़ि०) उम्मे-वरक़ा (रज़ि०) के घर गए तो देखा कि मकान के एक कोने में चादर में लिपटी बेजान पड़ी हैं। बहुत रंजीदा हुए और फ़रमाया, "अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सच फ़रमाया करते थे कि शहीदा के घर चलो।"

उसके बाद मिम्बर पर तशरीफ़ ले गए और इस ख़बर का एलान किया। ग़ुलाम और कनीज़ दोनों को गिरफ़्तार करने का हुक्म दिया। वे गिरफ़्तार होकर आए तो अमीरुल-मोमिनीन के हुक्म के मुताबिक़ इस भयानक जुर्म की सज़ा के तौर पर उन्हें सूली पर लटका दिया गया। सीरत-निगारों ने लिखा है कि दोनों वे पहले अपराधी थे जिनको मदीना में सूली दी गई थी।

इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि हज़रत उम्मे-वरक़ा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से कुछ हदीसें भी रिवायत की हैं, लेकिन किसी दूसरी किताब में उनकी हदीसों की रिवायत की चर्चा नहीं मिलती।

हज़रत उम्मे-मनीअ़ अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-मनीअ़ (रज़ि०) का नाम असमा-बिन्ते-अम्र-बिन-अदी था। वे ख़ज़रज के ख़ानदान बनू-सलमा से ताल्लुक़ रखती थीं। उन्होंने नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही इस्लाम क़बूल कर लिया था। सन् 13 नबवी में लैलतुल-अक़बा में नबी (सल्ल०) से बैअत करने की ख़ुशनसीबी उन्हें हासिल हुई। इस मौक़े पर बैअत की ख़ुशनसीबी 73 मर्दों के अलावा सिर्फ़ एक और ख़ातून हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) को नसीब हुई। यह वह बैअत थी जिसमें अंसार (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) को मदीना तशरीफ़ लाने की दावत दी और जान, माल और औलाद के साथ आप (सल्ल०) की हिफ़ाज़त और मदद करने का अहद लिया।

हज़रत उम्मे-मनीअ़ (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) — ख़ातूने-उहुद

अमीरुल-मोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि०) के ज़माने में एक बार ग़नीमत के माल (लड़ाई में दुश्मनों की तरफ़ से छोड़ा जानेवाला माल) में बहुत-से कपड़े आए। उनमें एक ज़री का दुपट्टा बहुत क़ीमती था। जब ग़नीमत का माल बाँटा जाने लगा तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने लोगों से पूछा कि इस दुपट्टे का सबसे बड़ा हक़दार कौन है? कुछ लोगों ने सलाह दी कि आप यह अपने बेटे हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) की बीवी को दे दें।[1]

हज़रत उमर (रज़ि०) कुछ देर सोचते रहे और फिर फ़रमाया—

---

1. लोगों ने यह सलाह इसलिए नहीं दी थी कि हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) ख़लीफ़ा के बेटे थे बल्कि इसलिए कि हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) बड़े बुलन्द मर्तबा सहाबी थे। जिहाद का शौक़, इल्म व फ़ज़्ल और इबादतगुज़ारी की वजह से वे लोगों में बड़ी इज़्ज़त की नज़रों से देखे जाते थे।

"नहीं, नहीं, मैं यह दुपट्टा उम्मे-उमारा को दूँगा। वे इसकी सबसे ज़्यादा हक़दार हैं क्योंकि उहुद की लड़ाई के बाद मैंने नबी (सल्ल०) से सुना था कि उहुद के दिन मैं उम्मे-उमारा को बराबर अपने दाएँ और बाएँ लड़ते देखता था।

यह कहकर आपने वह दुपट्टा हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के पास भेज दिया, जो मदीना के एक मकान में नबी (सल्ल०) की यादों को अपने दिल में बसाए अपनी ज़िन्दगी का आख़िरी ज़माना गुज़ार रही थीं। उनकी ज़िन्दगी में नबी (सल्ल०) से बेपनाह मुहब्बत और इस्लाम की राह में अपनी जान, औलाद और माल क़ुरबान कर देने के जज़्बात ऐसे रौशन थे कि हज़रत उमर (रज़ि०) और सभी सहाबा (रज़ि०) उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे, और उन्हें ख़ातूने-उहुद (उहुद की जंग में लड़नेवाली ख़ातून) कहकर पुकारते थे।

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) का नाम नुसैबा था, लेकिन तारीख़ में वे अपनी कुन्नियत ही से मशहूर हैं। वे अंसार के ख़ज़रज क़बीले के नज्जार ख़ानदान से ताल्लुक़ रखती थीं।

नसब का सिलसिला यह है : नुसैबा-बिन्ते-काब-बिन-अम्र-बिन-औफ़-बिन-मबज़ूल-बिन-अम्र-बिन-ग़न्म-बिन-माज़िन-बिन-नज्जार।

नबी (सल्ल०) की परदादी सलमा (अब्दुल-मुत्तलिब की माँ और हाशिम-बिन-अब्दे-मनाफ़ की बीवी) भी नज्जार के ख़ानदान ही से थीं। यह ख़ानदान मदीना का इज़्ज़तदार ख़ानदान था, फिर बाद में अब्दुल-मुत्तलिब का ननिहाल होने की वजह से और नबी (सल्ल०) की क़रीबी रिश्तेदारी होने की वजह से उसकी इज़्ज़त और ज़्यादा बढ़ गई। नबी (सल्ल०) को भी बनू-नज्जार से बड़ा लगाव था। सहीह मुस्लिम में है कि एक बार नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"अगर मैं अंसार के किसी घराने में शामिल होता तो बनू-नज्जार में शामिल होता।"

नबी (सल्ल०) जब छः साल के थे तो आप (सल्ल०) की माँ बीबी आमिना अपनी कनीज़ (दासी) उम्मे-ऐमन (रज़ि०) और नन्हें नबी (सल्ल०) के साथ मक्का से मदीना तशरीफ़ ले गईं। वहाँ वे लगभग एक महीना तक बनू-नज्जार ख़ानदान में ठहरीं। वापसी के सफ़र में जब 'अब्वा' नामी जगह पर पहुँचीं तो बीमार हो गईं और वहीं उनका इन्तिक़ाल हो गया। हज़रत उम्मे-ऐमन (रज़ि०) नबी (सल्ल०) को लेकर मक्का पहुँचीं। मदीना के उस सफ़र की बातें नबी (सल्ल०) को सारी उम्र याद रहीं। एक बार आप (सल्ल०) बनू-नज्जार के मुहल्ले से गुज़रे तो एक मकान की तरफ़ इशारा करके फ़रमाया, "यही वह मकान है जहाँ मैं अपनी माँ के साथ ठहरा था।" फिर आप (सल्ल०) ने एक तालाब और एक मैदान की तरफ़ इशारा करके फ़रमाया, "यही वह तालाब है, जिसमें मैंने तैरना सीखा था और यही वह मैदान है जहाँ मैं एक लड़की उनैसा के साथ खेला करता था।"

हिजरत के बाद नबी (सल्ल०) क़ुबा से मदीना तशरीफ़ लाए तो आप (सल्ल०) के मेज़बान बनने की ख़ुशनसीबी हज़रत अबू-अय्यूब अंसारी (रज़ि०) को हासिल हुई जो बनू-नज्जार के रईस थे। नबी (सल्ल०) के मदीना तशरीफ़ लाने से यूँ तो अंसार का बच्चा-बच्चा ख़ुशी से बेहाल था, लेकिन बनू-नज्जार के जोश, उमंग और ख़ुशियों का कोई ठिकाना ही न था। उनकी मासूम बच्चियाँ दफ़ बजा-बजाकर यह गीत गा रही थीं—

"हम बनू-नज्जार की लड़कियाँ हैं,

मुहम्मद (सल्ल०) क्या ही अच्छे पड़ोसी हैं!"

नबी (सल्ल०) उन बच्चियों के पास से गुज़रे तो मुस्कुराकर उनसे फ़रमाया—

"बच्चियो! क्या तुम मुझसे मुहब्बत रखती हो?"

सबने मिलकर जवाब दिया, "जी हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल!"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम भी मुझको बहुत प्यारी हो।"

दूसरी बैअते-अक़बा के बाद नबी (सल्ल०) के हुक्म के मुताबिक़ मदीनावालों ने दीनी मामलों की हिफ़ाज़त के लिए बारह सरदार चुने थे, उनमें हज़रत असअद-बिन-ज़ुरारा (रज़ि०) बनू-नज्जार के सरदार थे। नबी (सल्ल०) की हिजरत के थोड़े ही दिनों के बाद हज़रत असअद (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हो गया तो बनू-नज्जार के लोग नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और कहा—

"ऐ अल्लाह के रसूल! असअद की जगह अब किसी और को बनू-नज्जार का सरदार बना दें।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम लोग मेरे मामू हो, इसलिए अब बनू-नज्जार का सरदार मैं ख़ुद हूँ।"

नबी (सल्ल०) से यह सुनकर बनू-नज्जार की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। इस ख़ुशनसीबी के हासिल होने से बनू-नज्जार सचमुच अंसार का सबसे बेहतर ख़ानदान बन गया।

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) इसी ख़ानदान से ताल्लुक़ रखती थीं। ज़ाहिर है कि ऐसे अज़ीम ख़ानदान से ताल्लुक़ रखना ही बजाय ख़ुद एक बहुत बड़ी इज़्ज़त की बात थी, लेकिन हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) की इज़्ज़त और अज़मत की वजह कुछ और थी — वह थी इस्लाम की ख़ातिर अपनी हर चीज़ न्योछावर कर देने का जज़्बा और नबी (सल्ल०) से बेपनाह मुहब्बत और अक़ीदत, जिसने उनको अपनी जान, माल और औलाद हर चीज़ से बेपरवाह कर दिया था। इसी अक़ीदत और निष्ठा ने उनको इतना बुलन्द मर्तबा दिया कि बड़े-बड़े सहाबा उनपर नाज़ किया करते थे।

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) का पहला निकाह ज़ैद-बिन-आसिम से हुआ, जो उनके चचेरे भाई थे। ज़ैद से उनके दो बच्चे हुए, अब्दुल्लाह

(रज़ि०) और हबीब (रज़ि०)। दोनों भाई सहाबियों में शामिल हुए और वे इस्लामी तारीख़ में बड़े मशहूर हुए।

ज़ैद के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) का निकाह ग़ज़ीया-बिन-अम्र (रज़ि०) से हुआ, उनसे दो बच्चे तमीम और ख़ौला पैदा हुए। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) अंसार के साबिक़ीनल-अव्वलीन (यानी मदीने में इस्लाम की दावत पहुँचते ही इस्लाम लानेवालों) में से थीं। उन्होंने उस ज़माने में पूरे ख़ानदान के साथ इस्लाम क़बूल किया जब पहली बैअते-अक़बा के बाद हज़रत मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि०) यसरिब (मदीना) में इस्लाम की दावत दे रहे थे।

इस्लाम क़बूल करने के बाद सन् 13 नबवी में उन्हें उन 75 पाकीज़ा इनसानों में शामिल होने की ख़ुशनसीबी हासिल हुई, जिन्होंने दूसरी बैअते-अक़बा में नबी (सल्ल०) से बैअत की और यह अहद (संकल्प) लिया कि नबी (सल्ल०) यसरिब (मदीना) तशरीफ़ लाएँ तो वे अपनी जान, माल और औलाद से आप (सल्ल०) की मदद करेंगे और आप (सल्ल०) का साथ देंगे।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) का बयान है कि उनके शौहर ग़ज़ीया-बिन-अम्र (रज़ि०) भी दूसरी बैअते-अक़बा में शरीक थे, लेकिन सीरत की अक्सर किताबों में उनके शामिल होने की चर्चा नहीं मिलती। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के इस बैअत में शामिल होने पर सब सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है।

नबी (सल्ल०) की हिजरत के तीसरे साल उहुद की लड़ाई हुई। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) भी इस लड़ाई में शरीक हुईं और ऐसी बहादुरी, जाँनिसारी और साबित-क़दमी दिखाई कि तारीख़ में ख़ातूने-उहुद के लक़ब से मशहूर हो गईं। इब्ने-साद की रिवायत के मुताबिक़ उनके शौहर ग़ज़ीया-बिन-अम्र (रज़ि०) और दोनों बड़े बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) और हबीब (रज़ि०) भी उहुद की लड़ाई में शरीक थे।

जब तक मुसलमानों का पलड़ा भारी रहा, उम्मे-उमारा (रज़ि०) दूसरी औरतों के साथ मशकीज़ों में पानी भर-भरकर मुजाहिदों को पिलाती थीं और ज़ख़्मियों की देखभाल करती थीं। अचानक हुई चूक से जब लड़ाई का पाँसा पलट गया और मुजाहिद घबराहट और परेशानी का शिकार हो गए तो उस वक़्त नबी (सल्ल०) के पास गिनती के कुछ ही जाँनिसार रह गए थे। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने यह हाल देखा तो मशकीज़ा फेंककर तलवार और ढाल संभाल ली और नबी (सल्ल०) के क़रीब पहुँचकर इस्लाम के दुश्मनों से मुक़ाबला करने लगीं। इस्लाम के दुश्मनों ने बार-बार धावा बोलकर नबी (सल्ल०) की तरफ बढ़ने की कोशिश की लेकिन उम्मे-उमारा (रज़ि०) और दूसरे मुजाहिद उन्हें तीर और तलवार से रोकते रहे। यह बड़ा नाज़ुक वक़्त था, बड़े-बड़े बहादुरों के क़दम लड़खड़ा गए थे, लेकिन ये शेर-दिल ख़ातून साबित-क़दमी का पहाड़ बनकर लड़ाई के मैदान में डटी हुई थीं। इतने में एक मुशरिक ने उनके सिर पर पहुँचकर तलवार से वार किया। उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने उसे अपनी ढाल पर रोका और फिर उसके घोड़े के पाँव पर ऐसा भरपूर हाथ मारा कि घोड़ा और घुड़सवार दोनों ज़मीन पर आ गिरे। नबी (सल्ल०) यह हाल देख रहे थे, आप (सल्ल०) ने उम्मे-उमारा (रज़ि०) के बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) को पुकारकर फ़रमाया, "अब्दुल्लाह! अपनी माँ की मदद कर।" वे फ़ौरन उधर लपके और तलवार के एक ही वार से उस मुशरिक को क़त्ल कर डाला। ठीक उसी वक़्त एक दूसरा मुशरिक तेज़ी से उधर आया और हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) का बायाँ हाथ ज़ख़्मी करता हुआ निकल गया। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने अपने हाथ से अब्दुल्लाह की पट्टी की और फिर फ़रमाया, "बेटे! जाओ और जब तक जिस्म में जान है, लड़ो।" नबी (सल्ल०) ने उनकी जाँनिसारी देखकर फ़रमाया, "ऐ उम्मे-उमारा जैसी ताक़त तुममें है किसी और में कहाँ होगी!" इसी दरमियान वही मुशरिक जिसने अब्दुल्लाह (रज़ि०) को ज़ख़्मी किया था पलटकर फिर आया। नबी (सल्ल०) ने उम्मे-उमारा से

फ़रमाया, "उम्मे-उमारा, संभलना, यह वही बदनसीब है जिसने अब्दुल्लाह को ज़ख़्मी किया था।" हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) बड़े जोश से उसकी तरफ़ झपटीं और तलवार का ऐसा वार किया कि वह दो टुकड़े होकर नीचे गिर पड़ा। नबी (सल्ल०) यह देखकर मुस्कुरा उठे और फ़रमाया, "उम्मे-उमारा तुमने अपने बेटे का ख़ूब बदला लिया!"

लड़ाई में एक बदनसीब ने नबी (सल्ल०) पर दूर से पत्थर फेंका जिससे आप (सल्ल०) के दो दाँत शहीद हो गए। नबी (सल्ल०) के जाँनिसार परेशान होकर उधर लपके तो इब्ने-क़ुमय्या नाम का एक इस्लाम-दुश्मन बिना किसी ख़ौफ़ के नबी (सल्ल०) के पास पहुँच गया और तलवार का एक भरपूर वार किया। नबी (सल्ल०) ने 'ख़ूद' (लोहे की टोपी) पहन रखी थी। इब्ने-क़ुमय्या की तलवार 'ख़ूद' पर पड़ी और उसकी दो कड़ियाँ आप (सल्ल०) के गाल में धंस गईं और ख़ून की धार बह निकली यह सब कुछ पलक झपकते हो गया। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) तड़प उठीं। उन्होंने आगे बढ़कर इब्ने-क़ुमय्या को रोका। यह शख़्स क़ुरैश का नामी घुड़सवार था, लेकिन उम्मे-उमारा (रज़ि०) ज़रा न घबराईं और उसपर बड़ी बहादुरी से हमला किया। उसने दोहरी ज़िरह (लोहे का कवच) पहन रखा था, इसलिए उम्मे-उमारा (रज़ि०) की तलवार उचट गई और इब्ने-क़ुमय्या को जवाबी वार करने का मौक़ा मिल गया। इस वार से उनके कंधे पर बड़ा गहरा ज़ख़्म आया, लेकिन इब्ने-क़ुमय्या को वहाँ ठहरने की हिम्मत न हुई और वह तेज़ी से घोड़ा दौड़ाकर भाग गया। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के ज़ख़्म से ख़ून की धार बह रही थी। नबी (सल्ल०) ने उनके ज़ख़्म पर ख़ुद पट्टी बँधवाई और कई बहादुर सहाबियों का नाम लेकर फ़रमाया, "ख़ुदा की क़सम! आज उम्मे-उमारा ने उन सबसे बढ़कर बहादुरी दिखाई है।"

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, मेरे लिए दुआ फ़रमाएँ कि जन्नत में भी आप का साथ नसीब हो।"

नबी (सल्ल०) ने अल्लाह से गिड़गिड़ाकर उनके लिए दुआ माँगी, फिर बुलन्द आवाज़ से फ़रमाया—

"ऐ अल्लाह! जन्नत में इन्हें मेरे साथ रखना!"

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) को बड़ी ख़ुशी हुई और वे बेइख़्तियार कह उठीं, "अब मुझे दुनिया में किसी मुसीबत की परवाह नहीं।"

लड़ाई ख़त्म हुई तो नबी (सल्ल०) उस वक़्त तक घर तशरीफ़ न ले गए, जब तक कि आप (सल्ल०) ने अब्दुल्लाह-बिन-काब (रज़ि०) को भेजकर हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) की ख़ैरियत न मालूम कर ली।

नबी (सल्ल०) फ़रमाया करते थे कि, "उहुद के दिन मैं दाँए, बाँए जिधर देखता उम्मे-उमारा ही उम्मे-उमारा लड़ती दिखाई देती थीं।"

एक रिवायत में है कि उहुद की लड़ाई में हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के जिस्म पर बारह ज़ख़्म लगे थे। इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि उहुद की लड़ाई के बाद वे बैअते-रिज़वान, ख़ैबर की लड़ाई, उमरतुल-कज़ा और हुनैन की लड़ाई में भी शरीक रहीं। एक दूसरी रिवायत के मुताबिक़ मक्का की फ़तह के वक़्त भी वे नबी (सल्ल०) के साथ थीं।

सन् 11 हिजरी में नबी (सल्ल०) का इन्तिक़ाल हुआ। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ख़लीफ़ा बनाए गए। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में 'इरतिदाद' (इस्लाम को छोड़कर कुफ़्र-शिर्क इख़्तियार करना) की बग़ावत भड़क उठी। इस बग़ावत को कुचलने में जो लड़ाइयाँ लड़ी गईं उनमें सबसे सख़्त लड़ाई मुसैलिमा कज़्ज़ाब से थी। यह शख़्स यमामा के इलाक़े नजद के आसपास बनू-हनीफ़ा क़बीले का सरदार था। वह नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी के आख़िरी दिनों में इस्लाम को छोड़ बैठा था। फिर उसने ख़ुद नुबूवत का दावा किया था और नबी (सल्ल०) को यह ख़त भेजा था।

"मुसैलिमा रसूलुल्लाह की तरफ़ से मुहम्मद रसूलुल्लाह के नामः

मैं तुम्हारी रिसालत में शरीक किया गया हूँ। आधा मुल्क मेरा, आधा क़ुरैश का, लेकिन क़ुरैश एक ज़ालिम क़ौम है।"

नबी (सल्ल०) ने उस ख़त के जवाब में इस तरह ख़त लिखा—

"बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम, मुहम्मद रसूलुल्लाह का ख़त मुसैलिमा क़ज़्ज़ाब (झूठे) के नाम—

जो शख़्स हिदायत की पैरवी करे उसपर सलाम हो। तुझे मालूम होना चाहिए कि मुल्क अल्लाह का है, वह अपने बन्दों में जिसे चाहे इसका वारिस बना दे, और आख़िरत की भलाई अल्लाह से डरनेवालों के लिए है।"

इस ख़त के भेजने के कुछ ही दिनों बाद नबी (सल्ल०) का इन्तिक़ाल हो गया। अब मुसैलिमा कज़्ज़ाब ने अपनी चाल चली। अपनी चालाकियों और ज़ुल्म के हथकंडों के बल-बूते पर उसने लोगों को अपने साथ मिलाना शुरू किया। थोड़े ही दिनों में चालीस हज़ार से ज़्यादा लड़ाकू उसके झण्डे तले जमा हो गए। जो भी उसकी नुबूवत को मानने से इनकार करता, वह उसपर सख़्त ज़ुल्म ढाता।

उसी ज़माने में एक दिन हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के बेटे हबीब-बिन-ज़ैद (रज़ि०) उमान से मदीना आ रहे थे कि रास्ते में उस ज़ालिम के हत्थे चढ़ गए। उसने पूछा, "मुहम्मद के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है?"

हज़रत हबीब (रज़ि०) ने बेझिझक जवाब दिया, "वे अल्लाह के सच्चे रसूल हैं।"

मुसैलिमा बोला, "नहीं, यह कहो, मुसैलिमा अल्लाह का सच्चा रसूल है।"

हज़रत हबीब (रज़ि०) ने उसकी बात घृणा से ठुकरा दी। मुसैलिमा ने ग़ुस्से में भड़ककर उनका एक हाथ शहीद कर डाला और उनसे बोला, "अब मेरी बात मानोगे या नहीं?"

हज़रत हबीब (रज़ि०) ने जवाब दिया, "बिलकुल नहीं!"

मुसैलिमा ने अब उनका दूसरा हाथ शहीद कर डाला और बोला, "अब भी मुझे रसूल मान लो तो तुम्हारी जान बच सकती है।" हज़रत हबीब (रज़ि०) ने उम्मे-उमारा (रज़ि०) जैसी माँ का दूध पिया था, बोले—

"बिलकुल नहीं! बिलकुल नहीं! मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं।"

अब मुसैलिमा ग़ुस्से में भड़ककर पागल हो उठा। उसने उनके जिस्म का एक-एक जोड़ काटना शुरू कर दिया। इस्लाम की राह में कटते हुए जिस्म का तड़पना देखकर ज़ालिम क़हक़हे लगाता था। हज़रत हबीब (रज़ि०) टुकड़े-टुकड़े हो गए लेकिन हक़ की राह से अपने क़दमों को डगमगाने न दिया।

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने अपने मुजाहिद बेटे की मज़लूमाना शहादत की ख़बर सुनी तो उनकी साबित-क़दमी पर अल्लाह का शुक्र अदा किया, लेकिन यह प्रतिज्ञा कर ली कि मुसैलिमा से इस ज़ुल्म का बदला लेकर रहेंगी।

इस वाक़िए के कुछ मुद्दत बाद जब हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) को मुसैलिमा की बग़ावत को कुचलने के लिए भेजा तो हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) भी हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) की फ़ौज में शामिल हो गईं। मुसैलिमा ने भी इस लड़ाई की बड़ी ज़बरदस्त तैयारी की। उसने बनू-हनीफ़ा और दूसरे क़बीलेवालों को ख़ूब भड़काया और चालीस हज़ार लड़ाकुओं को हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) की

फ़ौज के मुक़ाबले पर ला खड़ा किया। दोनों फ़ौजों के बीच घमासान की लड़ाई हुई। मुसलमानों और मुर्तदों (इस्लाम से फिर जानेवाले) का अनुपात एक और चार था। लेकिन मुसलमान इस्लाम की ख़ातिर ऐसी जाँनिसारी से लड़े कि मुसैलिमा की फ़ौज का मुँह फेर दिया। फिर मुसैलिमा के बेटे शुरहबील ने अपने क़बीलेवालों के सामने तक़रीर की—

"ऐ बनू-हनीफ़ा! अपनी जान हथेली पर रखकर मुसलमानों का मुक़ाबला करो। आज क़ौम की ग़ैरत और ख़ुद्दारी का दिन है। अगर तुम हार गए तो तुम्हारे बाल-बच्चों पर मुसलमान क़ब्ज़ा कर लेंगे। इसलिए अपनी इज़्ज़त की हिफ़ाज़त के लिए कट मरो।"

शुरहबील की इस तक़रीर ने बिजली का काम किया और बनू-हनीफ़ा ने ऐसी लड़ाई लड़ी कि मुसलमानों को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। मुसलमानों को अब तक ऐसी सख़्त लड़ाई का सामना नहीं करना पड़ा था।

अब हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने मुसलमानों के तमाम क़बीलों को अलग-अलग कर दिया और एलान कर दिया कि हर क़बीला अपने झण्डे के नीचे लड़े ताकि पता चल जाए कि आज कौन अल्लाह के दीन के लिए साबित-क़दमी दिखाता है। यह तदबीर काम कर गई। हर क़बीले ने बहादुरी और साबित-क़दमी में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश की और ऐसी जाँनिसारी से लड़े कि मुसैलिमा की फ़ौज के लगातार और भयानक हमले भी उन्हें पीछे न धकेल सके। मुसलमानों के बड़े-बड़े तजरिबेकार अफ़सर शहीद हो गए, जिनमें हज़रत ज़ैद-बिन-ख़त्ताब (रज़ि०), हज़रत अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०), हज़रत सालिम-मौला-अबू-हुज़ैफ़ा (रज़ि०) और हज़रत साबित-बिन-क़ैस (रज़ि०) जैसे बुलन्द मर्तबे के सहाबा शामिल थे। लेकिन मुसलमान जमे रहे और उनके क़दम ज़रा न लड़खड़ाए।

अब मुसैलिमा की फ़ौज पीछे हटी और उसने हदीक़तुर्रहमान नामी बाग़ में घुसकर अन्दर से फाटक बन्द कर लिया। हज़रत बरा-बिन-मालिक (रज़ि०) दीवार फाँदकर बाग़ के अन्दर कूद गए और लड़ते-भिड़ते बाग़ के दरवाज़े पर पहुँचकर फाटक अन्दर से खोल दिया।

अब मुसलमानों और मुर्तदों के बीच ज़बरदस्त लड़ाई छिड़ गई। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) भी बड़ी बहादुरी और जोश से लड़ रही थीं। कई बार मुसैलिमा तक पहुँचने की कोशिश की मगर कामयाब नहीं हो सकीं। उधर हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) भी मुसैलिमा की घात में थे लेकिन मौक़ा नहीं मिल रहा था। उस वक़्त तक लगभग बारह सौ मुसलमान शहीद हो चुके थे। लेकिन इससे कहीं ज़्यादा तादाद में मुर्तद मारे जा चुके थे। अब लड़ाई का रुख़ पलटने लगा था।

मुसैलिमा ने यह रंग देखा तो अपने लोगों से बोला, अपनी इज़्ज़त बचाना है तो बचा लो। उसी वक़्त उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने उसे निशाने पर ले लिया और ज़ख़्म-पर-ज़ख़्म खातीं, बरछी से रास्ता बनातीं वे उसी तरफ़ बढ़ीं। इस कोशिश में उन्हें ग्यारह ज़ख़्म आए और एक हाथ भी कलाई से कट गया। मुसैलिमा के पास पहुँचकर वे अपनी बरछी से हमला करने ही वाली थीं कि दो हथियार एक साथ मुसैलिमा पर पड़े और वह कटकर घोड़े से नीचे जा पड़ा। उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने नज़र उठाकर देखा तो अपने पहलू में अपने बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) को खड़े पाया और क़रीब ही वहशी (रज़ि०) भी खड़े थे। वहशी (रज़ि०) ने अपना भाला मुसैलिमा पर फेंका था और अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने उसी वक़्त उसपर तलवार का वार किया था। हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने अपने बेटे हबीब (रज़ि०) के क़ातिल और मुसलमानों के कट्टर दुश्मन की मौत पर अल्लाह का शुक्र अदा किया। मुसलमानों की फ़ौज के अमीर हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के मर्तबे और क़द्र-क़ीमत को अच्छी तरह जानते थे, उन्होंने बड़े ध्यान से

उनका इलाज कराया। कुछ मुद्दत के बाद उनके ज़ख़्म भर गए, लेकिन एक हाथ हमेशा के लिए ख़ुदा की राह में जुदाई का ग़म दे गया। जब कभी उस घटना की चर्चा होती तो हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) की बहुत तारीफ़ करतीं और फ़रमातीं, "ख़ालिद ने बड़े ध्यान से मेरा इलाज कराया, वे बड़े भले और हमदर्द हैं।"

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के साल के बारे में तमाम तारीख़ें ख़ामोश हैं। लेकिन कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि वे हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में ज़िन्दा थीं और उन्हीं की ख़िलाफ़त के ज़माने में उनका इन्तिक़ाल हुआ।

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बहुत अक़ीदत और मुहब्बत थी। वे अपनी जान नबी (सल्ल०) पर क़ुरबान करने के लिए हर वक़्त तैयार रहती थीं। नबी (सल्ल०) भी उनसे बहुत लगाव रखते थे और कभी-कभी उनके घर तशरीफ़ ले जाते थे।

एक रिवायत में है कि एक बार नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए तो उन्होंने आप (सल्ल०) के सामने खाना पेश किया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम भी खाओ।" उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं रोज़े से हूँ।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "रोज़ेदार के सामने कुछ खाया जाए तो फ़रिश्ते उसपर दुरूद भेजते हैं।"[1] फिर आप (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के सामने खाना खाया।

---

1. याद रहे कि यह बात सिर्फ़ नफ़्ल रोज़ों के बारे में है। रमज़ान के फ़र्ज़ रोज़ों में से अगर किसी मजबूरी की वजह से रोज़ा छोड़ना पड़ जाए तो ऐसी हालत में दूसरे लोगों को रोज़ेदार के सामने बेझिझक खाना-पीना दुरुस्त न होगा।

एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) भी कभी-कभी हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) के घर उनका हाल पूछने जाया करते थे।

हज़रत उम्मे-उमारा (रज़ि०) ने कुछ हदीसें भी रिवायत की हैं। उनसे रिवायत करनेवालों में उम्मे-साद (रज़ि०), हारिस-बिन-अब्दुल्लाह (रह०), अब्बाद-बिन-तमीम-बिन-ज़ैद (रह०), लैला (कनीज़) और इकरिमा (रज़ि०) हैं।

हज़रत उम्मे-अतीया-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

ख़िलाफ़ते-राशिदा के ज़माने में मदीना की एक अंसारी ख़ातून के बेटे जिहाद पर गए। वहाँ वे लड़ाई के मैदान में अचानक बीमार हो गए। वहाँ से किसी तरह बसरा पहुँचे ताकि इलाज करा सकें। माँ को बेटे की बीमारी की ख़बर मिली तो परेशान होकर मदीना से बसरा के लिए चल पड़ीं। अभी रास्ते ही में थीं कि उनके बेटे का इन्तिक़ाल हो गया। बसरा पहुँचकर जब उन्हें मालूम हुआ कि बेटे का इन्तिक़ाल एक-दो दिन पहले ही हो चुका है तो ग़म से बेहाल हो गईं, लेकिन *"इन्ना-लिल्लाहि-व-इन्ना-इलैहि-राजिऊन"* पढ़कर ख़ामोश हो गईं। न रोईं, न चिल्लाईं, न कोहराम मचाया। तीसरे दिन ख़ुशबू मँगाकर मली और फ़रमाया—

> "नबी (सल्ल०) ने मना फ़रमाया है कि शौहर के अलावा किसी की मौत पर तीन दिन से ज़्यादा सोग किया जाए।"

नबी (सल्ल०) की ये फ़रमाँबरदार ख़ातून, जिन्होंने अपने बेटे की मौत पर भी नबी (सल्ल०) के हुक्म को याद रखा, हज़रत उम्मे-अतीया अंसारिया (रज़ि०) थीं।

हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) की गिनती बुलन्द मर्तबा सहाबियात में होती है। उनका नाम नुसैबा था और बाप का नाम हारिस जो अल्लामा

इब्ने-साद (रह०) के मुताबिक़ अंसार के क़बीले अबू-मालिक अल-नज्जार से ताल्लुक़ रखते थे। हज़रत अतीया (रज़ि०) उन ख़ुशनसीब लोगों में से थीं जो नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही इस्लाम क़बूल कर चुके थे। अनुमान है कि उन्होंने सन् 12 नबवी में पहली बैअते-अक़बा के बाद इस्लाम क़बूल किया इस तरह वे अंसार के साबिक़ूनल-अव्वलून में शामिल हो गईं।

जब नबी (सल्ल०) हिजरत करके मदीना तशरीफ़ लाए तो मदीनावाले झुंड-के-झुंड इस्लाम क़बूल करके नबी (सल्ल०) के हाथ पर बैअत करने लगे। बहुत-सी अंसारी औरतें जो नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही या आप (सल्ल०) की हिजरत के फ़ौरन बाद ईमान लाई थीं, चाहती थीं कि वे भी मर्दों की तरह नबी (सल्ल०) से बैअत की ख़ुशनसीबी हासिल करें। चूँकि नबी (सल्ल०) पराई औरतों के हाथ कभी नहीं छूते थे, इसलिए आप (सल्ल०) ने उन औरतों को जो बैअत करना चाहती थीं, एक मकान में इकट्ठा होने को कहा। उन औरतों में उम्मे-अतीया भी थीं। जब सारी औरतें उस मकान में जमा हो गईं तो नबी (सल्ल०) ने हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) को उन औरतों की तरफ़ भेजा कि वे इन शर्तों पर बैअत लें—

(1) किसी को ख़ुदा का साझी नहीं बनाएँगी। (यानी शिर्क नहीं करेंगी)

(2) अपनी औलाद को क़त्ल नहीं करेंगी। (जाहिलियत के ज़माने में अरबों में यह रिवाज था कि अपनी लड़कियों को पैदा होते ही ज़िन्दा दफ़न कर देते थे। यह शर्त इस ज़ुल्म को ख़त्म करने के लिए लगाई गई)

(3) चोरी न करेंगी।

(4) ज़िना (बदकारी) से बचेंगी।

(5) किसी पर झूठी तुहमत (लांछन) न लगाएँगी।

(6) अच्छी बातों से इनकार न करेंगी।

हज़रत उमर (रज़ि०) उस मकान पर तशरीफ़ लाए, जहाँ अंसार की औरतें इकट्ठा थीं। उन्होंने दरवाज़े पर खड़े होकर बैअत की शर्तें बयान कीं। सभी औरतों ने बिना किसी बहाने व बहस के उन शर्तों को मान लिया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपना हाथ अन्दर की तरफ़ बढ़ाया, औरतों ने अपने हाथ बैअत की निशानी के तौर पर बाहर निकाले। इस तरह उन्होंने हज़रत उमर (रज़ि०) के ज़रिए से नबी (सल्ल०) से बैअत की ख़ुशनसीबी हासिल कर ली।

बैअत के बाद हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) ने हज़रत उमर (रज़ि०) से पूछा, "अच्छी बातों से इनकार न करने का क्या मतलब है?"

उन्होंने जवाब दिया, "मातम और बैन[1] न करना।"

मुसनद अहमद में रिवायत है कि बैअत के वक़्त उम्मे-अतीया (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि अमुक ख़ानदान के लोग मेरे घर आकर किसी की मौत पर मातम कर चुके हैं। क़बीले के रिवाज के मुताबिक़ मुझे भी उनके यहाँ जाकर मातम करना ज़रूरी है। इसलिए आप (सल्ल०) मुझे ख़ासतौर पर इजाज़त दे दें। आप (सल्ल०) ने इजाज़त दे दी।

मौलाना सईद अंसारी ने इस रिवायत पर यह टिप्पणी की है—

"कुछ रिवायतों में है कि नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) को कोई जवाब नहीं दिया और जिन रिवायतों से यह साबित है कि नबी (सल्ल०) ने उन्हें इजाज़त दे दी थी तो यह इजाज़त सिर्फ़ हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) के लिए ख़ास थी, वरना यह बात अपनी जगह पर साबित है कि मातम और बैन जाइज़ नहीं।"

1. मरने वाले को याद कर-करके रोना और सीना पीटना।

सहीह बुख़ारी में हज़रत उम्मे-अतिया (रज़ि०) ने यही वाक़िआ दूसरी तरह से बयान किया है। वे कहती हैं कि हमने नबी (सल्ल०) से बैअत की, तो नबी (सल्ल०) ने सबसे पहले अल्लाह के साथ किसी को साझी न ठहराने का इक़रार लिया। फिर आप (सल्ल०) ने मातम करने से मना फ़रमाया। उसको सुनकर एक औरत ने अपना हाथ उठा लिया और कहा कि एक औरत ने मेरे साथ मातम किया था, मैं उसका बदला उतार लूँ। यह कहकर वह चली गई। फिर आकर आप (सल्ल०) से बैअत की।

मुस्तनद हदीसों से यह बात बिलकुल साबित है कि नबी (सल्ल०) ने मातम, बैन और छाती पीटने को सख़्ती से मना किया है। इसलिए यही बात माननी होगी कि जिस ख़ातून ने मातम का बदला उतारा, उन्होंने यह काम नबी (सल्ल०) की बैअत से पहले किया होगा।

नबी (सल्ल०) को हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) से बड़ा लगाव और उनपर बहुत भरोसा था। वे उन औरतों में से थीं जिन्हें नबी (सल्ल०) लड़ाइयों में अपने साथ रखते थे। हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) सात लड़ाइयों में नबी (सल्ल०) के साथ रहीं। वे मुजाहिदों के लिए खाना पकातीं और ज़ख़्मियों की मरहम-पट्टी करतीं। अगर इस्लामी फ़ौज में कोई बीमार हो जाता तो उसकी देखभाल करतीं।

सहीह मुस्लिम में ख़ुद हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) से रिवायत है कि मैं नबी (सल्ल०) के साथ 7 लड़ाइयों में शरीक हुई। मैं मुजाहिदों के सामान की देखभाल करती, उनके लिए खाना पकाती, ज़ख़्मियों का इलाज करती और उनकी निगरानी करती।

इस रिवायत से मालूम होता है कि हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) इलाज करना भी जानती थीं, और कम-से-कम घायलों की मरहम-पट्टी तो वे बहुत अच्छी तरह कर सकती थीं।

एक बार नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) को सदक़े की एक बकरी भेजी। उन्होंने उसे ज़िब्ह करके बाँटा तो उसके गोश्त का कुछ हिस्सा उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) को भी भेजा। नबी (सल्ल०) घर तशरीफ़ लाए तो हज़रत आइशा (रज़ि०) से खाना माँगा। उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! घर में और कोई चीज़ तो मौजूद नहीं है, लेकिन आप ने जो बकरी नुसैबा (उम्मे-अतीया) को दी थी उसका गोश्त घर में रखा है।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "लाओ, क्योंकि बकरी हक़दार के पास पहुँच चुकी!"

सन् 8 हिजरी में नबी (सल्ल०) की बेटी हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ तो हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) ने दूसरी औरतों के साथ मिलकर उन्हें आख़िरी ग़ुस्ल दिया। नबी (सल्ल०) ने ख़ुद ओट में खड़े होकर नहलाने का तरीक़ा बताया।

बुख़ारी और मुस्लिम में हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) रिवायत करती हैं कि नबी (सल्ल०) हमारे पास तशरीफ़ लाए जब कि हम आप (सल्ल०) की बेटी ज़ैनब (रज़ि०) को ग़ुस्ल दे रहे थे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इसको पानी और बेरी के पत्तों से ग़ुस्ल दो, तीन बार या उससे ज़्यादा, अगर तुम ज़रूरत समझो और आख़िरी बार काफ़ूर भी पानी में डालो और जब तुम ग़ुस्ल दे लो तो मुझे ख़बर करो।" फिर जब हमने ग़ुस्ल दे लिया और नबी (सल्ल०) को इसकी ख़बर दी तो नबी (सल्ल०) ने अपना तहबन्द हमारी तरफ़ फेंक दिया और फ़रमाया, "इस तहबन्द को जिस्म से लगा दो।" यानी उसके जिस्म पर लपेट दो कि बदन से लगा रहे।

एक और रिवायत में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ग़ुस्ल दो उसको "ताक़' (यानी तीन बार, पाँच बार, सात बार) और शुरू करो ग़ुस्ल को दाहिनी तरफ़ से और वुज़ू के अंगों से। उम्मे-अतीया (रज़ि०)

कहती हैं कि हमने मय्यित के बालों की तीन चोटियाँ बनाईं और उनको कमर की तरफ़ डाल दिया।

मय्यित के ग़ुस्ल के बारे में हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) की हदीस की बड़ी अहमियत है। बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि०) और ताबिईन (रह०) उनसे मय्यित के ग़ुस्ल का तरीक़ा पूछा करते थे।

हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के हुक्मों को पूरी तरह माना करती थीं, और कोई काम आप (सल्ल०) के हुक्म के बिना नहीं करती थीं। इसी वजह से सहाबियात में उनका दर्जा बहुत बुलन्द माना गया है। उम्मे-अतीया (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से बहुत अक़ीदत और मुहब्बत रखती थीं। अल्लामा इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि हज़रत अली (रज़ि०) कभी-कभी उनके घर तशरीफ़ ले जाते थे और खाने के बाद आराम किया करते थे।

हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) की ज़िन्दगी के ज़्यादा हालात सीरत की किताबों में नहीं मिलते। लेकिन यह पता चलता है कि उनके बेटे का इन्तिक़ाल ख़िलाफ़ते-राशिदा के ज़माने में ही किसी वक़्त हुआ। इस घटना के बाद वे बसरा में ही रहने लगीं और वहीं उनका इन्तिक़ाल हुआ। उनके इस एक बेटे के अलावा दूसरी किसी औलाद की चर्चा किताबों में नहीं है और न उनके शौहर का हाल कहीं बयान हुआ है। इल्म और फ़ज़्ल में हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) का दर्जा बहुत बलन्द है। उनसे 41 हदीसें रिवायत की गईं हैं। उनसे रिवायत करनेवालों में हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०), इब्ने-सीरीन (रह०), उम्मे-शराहील (रह०) और हफ़्सा-बिन्ते-सीरीन (रह०) शामिल हैं।

कुछ मसाइल में उनकी हदीसें बड़ी मुस्तनद और भरोसे के क़ाबिल हैं। मय्यित के ग़ुस्लवाली रिवायत की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। मय्यित पर सोग, औरतों द्वारा जनाज़े के साथ जाने और ईद की नमाज़ों

में शामिल होने के बारे में इनकी रिवायत की हुई हदीसें बड़ी अहमियत रखती हैं।

सहीह बुख़ारी की हदीस में वे कहती हैं,

"हमको मना किया गया है कि किसी मय्यित पर तीन दिन से ज़्यादा सोग करें। हाँ, शौहर की मौत पर बीवी को चार महीने दस दिन सोग करने का हुक्म है। इन दिनों में (विधवा औरत) न सुरमा लगाए, न ख़ुशबू मले, न 'असब' (एक तरह की यमनी चादर) के सिवा कोई रंगीन कपड़ा पहने।"

सहीह बुख़ारी की एक और हदीस में वे रिवायत करती हैं कि "हमको जनाज़ों के साथ जाने से मना कर दिया गया था, लेकिन ज़ोर देकर मना नहीं किया गया था।"

हदीस के टीकाकारों ने लिखा है कि औरत कम सब्र करनेवाली और ज़्यादा रोने-पीटनेवाली होती हैं, इसलिए उन्हें जनाज़ों के साथ क़ब्रिस्तान जाने से मना किया गया है। हाँ, अगर कोई सब्र करनेवाली हो तो वह जा सकती है।

सहीह बुख़ारी में ईद के बारे में हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने हमें हुक्म दिया था कि हम दोनों ईदों पर जवान औरतों और परदे-वालियों को भी लाया करें और हाइज़ा (मासिक धर्मवाली) औरतों को हुक्म दिया गया था कि वे ईदगाह से अलग रहें यानी उसके किनारे पर बैठी रहें।

एक और रिवायत में है कि हमें ईद के दिन ईदगाह जाने का हुक्म दिया जाता था यहाँ तक कि कुँवारी लड़कियों को भी वहाँ भेजा जाता था। हाइज़ा औरत को, ईदगाह से अलग रहने के बावजूद, हुक्म था कि

वे तकबीर के साथ तकबीर कहें और दुआ के साथ दुआ करें और उस दिन की ख़ुशी और बरकत में शामिल हों।

हदीस के टीकाकारों ने लिखा है कि अगर परदे का उचित इन्तिज़ाम हो तो औरतें भी जुमा और ईद की नमाज़ों में शरीक हो सकती हैं, बल्कि उनका शरीक होना सुन्नत है।

हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने हज़रत उम्मे-अतीया (रज़ि०) के बारे में लिखा है– "सहाबियात में उनका बड़ा मर्तबा था।"

हज़रत असमा अंसारिया (रज़ि०)

नबी (सल्ल०) मक्का से हिजरत के बाद जब मदीना तशरीफ़ लाए तो मदीनावालों में जो लोग अक़बा की बैअत नहीं हासिल कर सके थे, झुंड-के-झुंड आप (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर बैअत की ख़ुशनसीबी हासिल करने लगे। उसी ज़माने में एक दिन नबी (सल्ल०) अपने कुछ जाँनिसारों के साथ तशरीफ़ रखे हुए थे कि औरतों का एक गरोह आप (सल्ल०) की ख़िदमत में आया। उनमें से एक ख़ातून आगे बढ़कर यूँ कहने लगीं–

> "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान हों, मैं मुसलमान औरतों की तरफ़ से एक पैग़ाम लेकर आई हूँ। अल्लाह ने आपको मर्दों और औरतों, सबकी हिदायत के लिए नबी बनाया है। हम आपपर ईमान लाए हैं, लेकिन मर्दों और औरतों की हालत में बड़ा फ़र्क़ है। औरतें घरों में रहती हैं, इसलिए मर्दों की तरह जमाअत से नमाज़, जुमा की नमाज़ और जनाज़े की नमाज़ में शरीक नहीं हो सकतीं और न हज और जिहाद में आमतौर से हिस्सा ले सकती हैं मगर जब मर्द बाहर होते हैं तो वे उनकी औलाद की परवरिश करती हैं, उनके माल की हिफ़ाज़त करती हैं और उनके बच्चों के कपड़ों

के लिए चरख़ा कातती हैं और कपड़ा बुनती हैं। क्या औरतों को भी मर्दों की नेकी के कामों का अज्र (अच्छा बदला) और सवाब मिलेगा?"

नबी (सल्ल०) उस ख़ातून की बात पेश करने के सलीक़े और अन्दाज़ से बहुत ख़ुश हुए और सहाबियों से फ़रमाया--

"क्या तुमने दीन के बारे में किसी औरत से ऐसी बातें सुनी हैं?"

सहाबियों (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमने कभी सोचा भी नहीं था कि कोई औरत ऐसी बातें कर सकती है।"

इसपर नबी (सल्ल०) ने उस ख़ातून से फ़रमाया--

"औरत के लिए शौहर की रज़ामन्दी बहुत ज़रूरी है। अगर एक औरत बीवी की ज़िम्मेदारियों को पूरा करती है, शौहर का साथ देती है और उसकी फ़रमाँबरदारी करती है तो उसको भी मर्द के बराबर बदला मिलेगा।"

नबी (सल्ल०) से यह सुनकर वे ख़ातून और उनके साथ आनेवाली औरतों को ऐसी ख़ुशी हुई कि उनके क़दम ज़मीन पर नहीं टिकते थे।

वे ख़ातून जिनके बयान और बात पेश करने के सलीक़े की नबी (सल्ल०) ने तारीफ़ की, हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद अंसारिया (रज़ि०) थीं।

हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) की गिनती बुलन्द दर्जेवाली सहाबियात में होती है। उनका ताल्लुक़ औस के ख़ानदान बनू-अब्दुल-अशहल से था, जो औस का सबसे शरीफ़ घराना था और सारे क़बीले की सरदारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी ख़ानदान में चली आ रही थी। मशहूर सहाबी हज़रत साद-बिन-मुआज़ भी इसी ख़ानदान से थे।

हज़रत असमा (रज़ि०) के नसब का सिलसिला यह है : असमा-बिन्ते-यज़ीद-बिन-सकन-बिन-राफ़े-बिन-इमरुउल-क़ैस-बिन-ज़ैद-बिन-अब्दुल-अशहल-बिन-जशम-बिन-हारिस-बिन-खज़रज-बिन-अम्र-बिन-मालिक-बिन-औस।

उनका नसब इमरुउल-क़ैस पर हज़रत साद-बिन-मुआज़ (रज़ि०) से और राफ़े पर हज़रत उसैद-बिन-हुज़ैर (रज़ि०) से मिल जाता है। हज़रत साद (रज़ि०) रिश्ते में उनके चचा होते थे और उसैद (रज़ि०) भतीजे।

आम रिवायतों में है कि हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद इस्लाम क़बूल किया। लेकिन उनकी सीरत पर नज़र डालने से अन्दाज़ा होता है कि वे हिजरत से पहले ही इस्लाम क़बूल कर चुकी थीं। क्योंकि तमाम सीरत-निगारों का इस बातपर इत्तिफ़ाक़ है कि दूसरी बैअते-अक़बा से पहले हज़रत मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि०) की इस्लाम के प्रचार की कोशिशों के नतीजों में औस क़बीले के सरदार साद-बिन-मुआज़ (रज़ि०) और अबू-अब्दुल-अशहल के दूसरे सरदार हज़रत उसैद-बिन-हुज़ैर (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल कर लिया था। दोनों सरदारों के इस्लाम क़बूल करने की वजह से एक-दो लोगों को छोड़कर लगभग सारा क़बीला एक दिन में मुसलमान हो गया था। अनुमान है कि हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) ने भी उसी वक़्त इस्लाम क़बूल किया होगा। ऊपर जो घटना बयान की गई है, वह नबी (सल्ल०) की हिजरत के कुछ दिनों बाद पेश आई थी। हज़रत असमा (रज़ि०) की तक़रीर से भी ज़ाहिर है कि वे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाजिर होने से पहले ही ईमान की दौलत हासिल कर चुकी थीं।

एक रिवायत में हज़रत असमा (रज़ि०) के बाप यज़ीद-बिन-सकन को सहाबी बताया गया है, लेकिन आमतौर पर किताबों में उनके इस्लाम क़बूल करने की चर्चा नहीं मिलती, इसलिए यक़ीन से कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन यज़ीद के सगे भाई, हज़रत असमा (रज़ि०) के चचा,

हज़रत ज़ियाद-बिन-सकन (रज़ि०) और उन (यज़ीद) के भतीजे हज़रत उमारा-बिन-ज़ियाद (रज़ि०) बड़े मुख़लिस (निष्ठवान) सहाबी थे। एक रिवायत में है कि हज़रत असमा (रज़ि०) की बहन उम्मे-बुजैद हब्बा-बिन्ते-यज़ीद-बिन-सकन (रज़ि०) ने भी उनके साथ ही इस्लाम क़बूल कर लिया था। वे उन कुछ सहाबियात में से हैं, जो बैअते-रिज़वान में शरीक हुईं।

मुसनद अहमद में है कि हज़रत असमा (रज़ि०) के साथ उनकी ख़ाला भी नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई थीं। उन्होंने हाथों में सोने के कंगन और अँगूठियाँ पहन रखी थीं।[1] नबी (सल्ल०) की नज़र उनपर पड़ी तो पूछा, "इनकी ज़कात देती हो?" बोलीं, "नहीं"। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तुमको पसन्द है कि आख़िरत में ख़ुदा इनके बदले तुम्हें आग के कंगन पहनाए?"

हज़रत असमा (रज़ि०) ने अपनी ख़ाला से कहा, "ख़ाला इनको उतार दो।"

उन्होंने सारे ज़ेवर उतारकर फेंक दिए।

फिर हज़रत असमा (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अगर हम ज़ेवर न पहनें तो शौहर की नज़रों से गिर जाएँगे"। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तो फिर चाँदी के ज़ेवर बनवाओ और उनपर ज़ाफ़रान मल दो कि सोने जैसी चमक पैदा हो जाए।"

इसके बाद हज़रत असमा (रज़ि०) ने दूसरी औरतों के साथ नबी (सल्ल०) से बैअत करनी चाही और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अपना हाथ बढ़ाइए।"

---

1. एक दूसरी रिवायत में है कि ख़ुद हज़रत असमा (रज़ि०) ने ये ज़ेवर पहन रखे थे और नबी (सल्ल०) का हुक्म सुनकर उन्होंने तुरन्त तमाम ज़ेवर उतार दिए थे।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि "मैं औरतों से हाथ नहीं मिलाता, अलबत्ता अगर तुम इन बातों का इक़रार करो तो बैअत हो जाएगी।"

(1) अपनी औलाद को क़त्ल न करोगी।

(2) चोरी न करोगी।

(3) किसी को ख़ुदा का शरीक न बनाओगी।

(4) ज़िना (व्यभिचार) से बचोगी।

(5) किसी पर झूठी तुहमत (लांछन) न लगाओगी।

(6) अच्छी बातों से इनकार न करोगी।

हज़रत असमा (रज़ि०) और उनकी साथी औरतों ने सच्चे दिल से इन बातों का इक़रार किया और अपने घर चली गईं।

सन् 1 हिजरी शव्वाल के महीने में हज़रत आइशा (रज़ि०) की रुख़्सती हुई तो हज़रत असमा (रज़ि०) ने कुछ दूसरी औरतों के साथ मिलकर उन्हें सँवारा, फिर नबी (सल्ल०) को ख़बर दी। नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए। किसी ने दूध पेश किया। नबी (सल्ल०) ने थोड़ा-सा दूध पीकर हज़रत आइशा (रज़ि०) को दे दिया। उन्होंने शर्म से सिर झुका लिया। हज़रत असमा (रज़ि०) ने प्यार से डाँटा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जो देते हैं ले लो। तब हज़रत आइशा (रज़ि०) ने भी कुछ दूध पी लिया।

सहीह बुख़ारी में है कि अंसार की औरतें जिनमें हज़रत असमा (रज़ि०) भी थीं, दुल्हन को लेने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के घर आईं हज़रत उम्मे-रूमान (रज़ि०) ने हज़रत आइशा (रज़ि०) का मुँह धुलाकर बाल सँवार दिए। फिर उनको उस कमरे में ले गईं जहाँ अंसार की औरतें दुल्हन के इन्तिज़ार में बैठी थीं। हज़रत आइशा (रज़ि०) अन्दर दाख़िल हुईं तो अंसारी औरतों ने यह कहकर स्वागत किया—

"तुम्हारा आना नेकी और बरकत के साथ हो!"

ख़ुद हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) रिवायत करती हैं कि हज़रत आइशा (रज़ि०) की रुख़्सती के बाद नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए तो मैं वहाँ मौजूद थी। नबी (सल्ल०) ने प्याले से थोड़ा-सा दूध पीकर हज़रत आइशा (रज़ि०) की तरफ़ बढ़ाया, वे शर्माने लगीं। मैंने कहा, "नबी (सल्ल०) जो चीज़ दे रहे हैं, उसे वापस न करो। उन्होंने शर्माते-शर्माते दूध ले लिया और एक घूँट पीकर रख दिया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपनी सहेलियों को दो!"

हमने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इस वक़्त हमको भूख नहीं।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "झूठ न बोलो, आदमी का एक-एक झूठ लिखा जाता है।" (मुसनद अहमद-बिन-हम्बल)

इस रिवायत से मालूम होता है कि हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) की सहेली थीं।

हज़रत असमा (रज़ि०) और उनके सभी रिश्तेदार अल्लाह और अल्लाह के रसूल से बहुत मुहब्बत करते थे और इस्लाम की ख़ातिर वे अपनी जान और माल सब कुछ न्योछावर करने के लिए हर वक़्त तैयार रहते थे। सन् 2 हिजरी में जब बद्र की लड़ाई हुई तो सारे बनू-अब्दुल-अशहल के लोग इसमें दिल-जान से शरीक हुए। उनमें हज़रत असमा के कई क़रीबी रिश्तेदार भी थे। उहुद की लड़ाई में भी यही हाल था। इस लड़ाई में हज़रत असमा (रज़ि०) के चचा हज़रत ज़ियाद-बिन-सकन (रज़ि०) और चचेरे भाई हज़रत उमारा-बिन-ज़ियाद (रज़ि०) ने इस शान से अपनी जान नबी (सल्ल०) पर क़ुरबान की कि दूसरे सहाबा उनपर रश्क करते थे।

उहुद के मैदान में मुशरिकों ने नबी (सल्ल०) को क़त्ल करने का नापाक इरादा कर रखा था। अपने इस इरादे को पूरा करने के लिए वे

बार-बार नबी (सल्ल०) पर हमला करते थे। एक बार ऐसी ही मुश्किल हालत सामने आ गई तब नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि कौन है जो दुश्मनों का ख़ातिमा करे और अपनी जान अल्लाह की राह में बेच दे। फ़ौरन पाँच अंसारी जाँनिसार आगे बढ़े और बड़ी बहादुरी से लड़कर अपनी जानें नबी (सल्ल०) पर क़ुरबान कर दीं। इन जाँनिसारों में एक हज़रत ज़ियाद-बिन-सकन (रज़ि०) थे। ज़ियाद (रज़ि०) के बेटे हज़रत उमारा (रज़ि०) भी बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। उनके जिस्म पर तेरह ज़ख़्म लग चुके थे, लेकिन पीछे हटने का नाम न लेते थे। आख़िर चौदहवें ज़ख़्म के साथ ताक़त जवाब दे गई और गिर पड़े। लोगों ने समझा शहीद हो गए हैं। नबी (सल्ल०) को ख़बर दी गई तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उमारा की लाश को मेरे पास लाओ।" लोग उनकी तरफ़ दौड़े, देखा कि अभी साँस चल रही है। उठाकर नबी (सल्ल०) के सामने रख दिया। बोलने की ताक़त नहीं थी, लेकिन बुझती हुई आँखें दिल का हाल कह रही थीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! यह तो सिर्फ़ एक जान थी, अगर हज़ार जानें भी होतीं तो वे भी आप (सल्ल०) पर क़ुरबान कर देता।"

फिर उन्होंने अपना चेहरा नबी (सल्ल०) के क़दमों से लगा दिया और इसी हालत में इन्तिक़ाल किया।

यही वह ख़ानदान था जिसमें हज़रत असमा (रज़ि०) पली, बढ़ीं, और बुढ़ापे की उम्र को पहुँचीं।

हज़रत असमा (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बड़ी अक़ीदत और मुहब्बत थी। अकसर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत मे हाज़िर होतीं और इल्म हासिल करतीं। एक बार नबी (सल्ल०) ने उनके सामने दज्जाल की चर्चा की तो बड़ी प्रभावित हुईं और रोने लगीं। नबी (सल्ल०) उठकर बाहर तशरीफ़ ले गए। कुछ देर बाद जब आप (सल्ल०) वापस तशरीफ़ लाए तो हज़रत असमा (रज़ि०) अभी तक सिसकियाँ ले रही थीं। आप

(सल्ल०) ने फ़रमाया, "असमा! इतना क्यों रोती हो?" बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमसे तो इतनी भूख भी नहीं सहन होती कि कनीज़ इत्मीनान से आटा गूँधकर रोटी पका ले। दज्जाल के ज़माने में जो अकाल पड़ेगा, हम ईमान पर कैसे साबित-क़दम रहेंगे?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उस वक़्त अल्लाह के ज़िक्र की कसरत (बहुतायत) भूख से बचाएगी।"

फिर उन्हें तसल्ली दी कि रोने की ज़रूरत नहीं है, अगर मैं उस वक़्त तक ज़िन्दा रहा तो मुसलमानों की हिफ़ाज़त करूँगा। अगर दज्जाल मेरे बाद प्रकट हुआ तो हर मुसलमान की हिफ़ाज़त अल्लाह ख़ुद करेगा।

एक बार हज़रत असमा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ऊँटनी की नकेल थामे खड़ी थीं कि नबी (सल्ल०) पर वह्य नाज़िल हुई। हज़रत असमा (रज़ि०) बयान करती हैं कि ऊँटनी उस वक़्त बोझ तले दबी जाती थी, मैं डरने लगी कि कहीं उसकी टाँगे न टूट जाएँ।

एक बार हज़रत असमा (रज़ि०) कुछ दूसरी औरतों के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर थीं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "शायद ऐसा होता हो कि मर्द या औरत अपने आपसी ताल्लुक़ात की बातें दूसरे आदमियों को बताते हों?"

दूसरी औरतें तो ख़ामोश रहीं, हज़रत असमा (रज़ि०) ने कहा, "जी हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल! कुछ मर्द और औरतें ऐसा करती हैं।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। ऐसा आदमी उस शैतान जैसा है जो किसी शैतान औरत से सबके सामने सोहबत में लगा रहे।"

हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में यरमूक की ज़बरदस्त लड़ाई हुई तो जिहाद के शौक़ ने हज़रत असमा (रज़ि०) को घर न बैठने दिया। वे अपने ख़ानदानवालों के साथ इस लड़ाई में शरीक

हुईं और पूरी साबित-क़दमी से लड़ाई में हिस्सा लिया। एक मौक़े पर ईसाई मुसलमानों को धकेलते हुए औरतों के ख़ेमों तक आ पहुँचे। हज़रत असमा (रज़ि०) और दूसरी मुसलमान औरतें ख़ेमों की लकड़ियाँ उखाड़कर दुश्मनों पर टूट पड़ीं और उनको पीछे धकेल दिया। सीरत-निगारों ने लिखा है कि हज़रत असमा (रज़ि०) ने अकेली अपनी लकड़ी से नौ रूमियों को क़त्ल किया।

हज़रत असमा (रज़ि०) को मेहमानों की ख़िदमत में बड़ी ख़ुशी मिलती थी। एक बार मशहूर ताबिई "शहर-बिन-हौशब (रह०)" उनके घर आए। हज़रत असमा (रज़ि०) ने बड़ी मुहब्बत से खाना पेश किया। उन्होंने खाने से इनकार कर दिया। हज़रत असमा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी की एक घटना सुनाकर फ़रमाया, "अब तो तुम्हें इनकार नहीं?"

उन्होंने कहा, "अम्मा, अब ऐसी ग़लती नहीं करूँगा।"

हज़रत असमा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 15 हिजरी में होनेवाली यरमूक की लड़ाई के कई साल बाद हुआ। उनसे कुछ हदीसें भी रिवायत की गई हैं। उनकी औलाद का ज़िक्र किताबों में नहीं मिलता।

हाफ़िज इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने उनके बारे में लिखा है –

"वे अक़्लमन्द भी थीं और दीन की जानकारी भी रखती थीं।"

समाप्त

के लिए चरख़ा कातती हैं और कपड़ा बुनती हैं। क्या औरतों को भी मर्दों की नेकी के कामों का अज्र (अच्छा बदला) और सवाब मिलेगा?"

नबी (सल्ल०) उस ख़ातून की बात पेश करने के सलीक़े और अन्दाज़ से बहुत ख़ुश हुए और सहाबियों से फ़रमाया—

"क्या तुमने दीन के बारे में किसी औरत से ऐसी बातें सुनी हैं?"

सहाबियों (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमने कभी सोचा भी नहीं था कि कोई औरत ऐसी बातें कर सकती है।"

इसपर नबी (सल्ल०) ने उस ख़ातून से फ़रमाया—

"औरत के लिए शौहर की रज़ामन्दी बहुत ज़रूरी है। अगर एक औरत बीवी की ज़िम्मेदारियों को पूरा करती है, शौहर का साथ देती है और उसकी फ़रमाँबरदारी करती है तो उसको भी मर्द के बराबर बदला मिलेगा।"

नबी (सल्ल०) से यह सुनकर वे ख़ातून और उनके साथ आनेवाली औरतों को ऐसी ख़ुशी हुई कि उनके क़दम ज़मीन पर नहीं टिकते थे।

वे ख़ातून जिनके बयान और बात पेश करने के सलीक़े की नबी (सल्ल०) ने तारीफ़ की, हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद अंसारिया (रज़ि०) थीं।

हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) की गिनती बुलन्द दर्जेवाली सहाबियात में होती है। उनका ताल्लुक़ औस के ख़ानदान बनू-अब्दुल-अशहल से था, जो औस का सबसे शरीफ़ घराना था और सारे क़बीले की सरदारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी ख़ानदान में चली आ रही थी। मशहूर सहाबी हज़रत साद-बिन-मुआज़ भी इसी ख़ानदान से थे।

हज़रत असमा (रज़ि०) के नसब का सिलसिला यह है : असमा-बिन्ते-यज़ीद-बिन-सकन-बिन-राफ़े-बिन-इमरुउल-क़ैस-बिन-ज़ैद-बिन-अब्दुल-अशहल-बिन-जशम-बिन-हारिस-बिन-खज़रज-बिन-अम्र-बिन-मालिक-बिन-औस।

उनका नसब इमरुउल-क़ैस पर हज़रत साद-बिन-मुआज़ (रज़ि०) से और राफ़े पर हज़रत उसैद-बिन-हुज़ैर (रज़ि०) से मिल जाता है। हज़रत साद (रज़ि०) रिश्ते में उनके चचा होते थे और उसैद (रज़ि०) भतीजे।

आम रिवायतों में है कि हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद इस्लाम क़बूल किया। लेकिन उनकी सीरत पर नज़र डालने से अन्दाज़ा होता है कि वे हिजरत से पहले ही इस्लाम क़बूल कर चुकी थीं। क्योंकि तमाम सीरत-निगारों का इस बातपर इत्तिफ़ाक़ है कि दूसरी बैअते-अक़बा से पहले हज़रत मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि०) की इस्लाम के प्रचार की कोशिशों के नतीजों में औस क़बीले के सरदार साद-बिन-मुआज़ (रज़ि०) और अबू-अब्दुल-अशहल के दूसरे सरदार हज़रत उसैद-बिन-हुज़ैर (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल कर लिया था। दोनों सरदारों के इस्लाम क़बूल करने की वजह से एक-दो लोगों को छोड़कर लगभग सारा क़बीला एक दिन में मुसलमान हो गया था। अनुमान है कि हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) ने भी उसी वक़्त इस्लाम क़बूल किया होगा। ऊपर जो घटना बयान की गई है, वह नबी (सल्ल०) की हिजरत के कुछ दिनों बाद पेश आई थी। हज़रत असमा (रज़ि०) की तक़रीर से भी ज़ाहिर है कि वे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाजिर होने से पहले ही ईमान की दौलत हासिल कर चुकी थीं।

एक रिवायत में हज़रत असमा (रज़ि०) के बाप यज़ीद-बिन-सकन को सहाबी बताया गया है, लेकिन आमतौर पर किताबों में उनके इस्लाम क़बूल करने की चर्चा नहीं मिलती, इसलिए यक़ीन से कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन यज़ीद के सगे भाई, हज़रत असमा (रज़ि०) के चचा,

हज़रत ज़ियाद-बिन-सकन (रज़ि०) और उन (यज़ीद) के भतीजे हज़रत उमारा-बिन-ज़ियाद (रज़ि०) बड़े मुख़लिस (निष्ठवान) सहाबी थे। एक रिवायत में है कि हज़रत असमा (रज़ि०) की बहन उम्मे-बुजैद हब्बा-बिन्ते-यज़ीद-बिन-सकन (रज़ि०) ने भी उनके साथ ही इस्लाम क़बूल कर लिया था। वे उन कुछ सहाबियात में से हैं, जो बैअते-रिज़वान में शरीक हुईं।

मुसनद अहमद में है कि हज़रत असमा (रज़ि०) के साथ उनकी ख़ाला भी नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई थीं। उन्होंने हाथों में सोने के कंगन और अँगूठियाँ पहन रखी थीं।[1] नबी (सल्ल०) की नज़र उनपर पड़ी तो पूछा, "इनकी ज़कात देती हो?" बोलीं, "नहीं"। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तुमको पसन्द है कि आख़िरत में ख़ुदा इनके बदले तुम्हें आग के कंगन पहनाए?"

हज़रत असमा (रज़ि०) ने अपनी ख़ाला से कहा, "ख़ाला इनको उतार दो।"

उन्होंने सारे ज़ेवर उतारकर फेंक दिए।

फिर हज़रत असमा (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अगर हम ज़ेवर न पहनें तो शौहर की नज़रों से गिर जाएँगे"। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तो फिर चाँदी के ज़ेवर बनवाओ और उनपर ज़ाफ़रान मल दो कि सोने जैसी चमक पैदा हो जाए।"

इसके बाद हज़रत असमा (रज़ि०) ने दूसरी औरतों के साथ नबी (सल्ल०) से बैअत करनी चाही और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अपना हाथ बढ़ाइए।"

---

1. एक दूसरी रिवायत में है कि खुद हज़रत असमा (रज़ि०) ने ये ज़ेवर पहन रखे थे और नबी (सल्ल०) का हुक्म सुनकर उन्होंने तुरन्त तमाम ज़ेवर उतार दिए थे।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि "मैं औरतों से हाथ नहीं मिलाता, अलबत्ता अगर तुम इन बातों का इक़रार करो तो बैअत हो जाएगी।"

(1) अपनी औलाद को क़त्ल न करोगी।

(2) चोरी न करोगी।

(3) किसी को ख़ुदा का शरीक न बनाओगी।

(4) ज़िना (व्यभिचार) से बचोगी।

(5) किसी पर झूठी तुहमत (लांछन) न लगाओगी।

(6) अच्छी बातों से इनकार न करोगी।

हज़रत असमा (रज़ि०) और उनकी साथी औरतों ने सच्चे दिल से इन बातों का इक़रार किया और अपने घर चली गईं।

सन् 1 हिजरी शव्वाल के महीने में हज़रत आइशा (रज़ि०) की रुख़्सती हुई तो हज़रत असमा (रज़ि०) ने कुछ दूसरी औरतों के साथ मिलकर उन्हें सँवारा, फिर नबी (सल्ल०) को ख़बर दी। नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए। किसी ने दूध पेश किया। नबी (सल्ल०) ने थोड़ा-सा दूध पीकर हज़रत आइशा (रज़ि०) को दे दिया। उन्होंने शर्म से सिर झुका लिया। हज़रत असमा (रज़ि०) ने प्यार से डाँटा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जो देते हैं ले लो। तब हज़रत आइशा (रज़ि०) ने भी कुछ दूध पी लिया।

सहीह बुख़ारी में है कि अंसार की औरतें जिनमें हज़रत असमा (रज़ि०) भी थीं, दुल्हन को लेने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के घर आईं हज़रत उम्मे-रूमान (रज़ि०) ने हज़रत आइशा (रज़ि०) का मुँह धुलाकर बाल सँवार दिए। फिर उनको उस कमरे में ले गईं जहाँ अंसार की औरतें दुल्हन के इन्तिज़ार में बैठी थीं। हज़रत आइशा (रज़ि०) अन्दर दाख़िल हुईं तो अंसारी औरतों ने यह कहकर स्वागत किया—

"तुम्हारा आना नेकी और बरकत के साथ हो!"

ख़ुद हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) रिवायत करती हैं कि हज़रत आइशा (रज़ि०) की रुख़्सती के बाद नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए तो मैं वहाँ मौजूद थी। नबी (सल्ल०) ने प्याले से थोड़ा-सा दूध पीकर हज़रत आइशा (रज़ि०) की तरफ़ बढ़ाया, वे शर्माने लगीं। मैंने कहा, "नबी (सल्ल०) जो चीज़ दे रहे हैं, उसे वापस न करो। उन्होंने शर्माते-शर्माते दूध ले लिया और एक घूँट पीकर रख दिया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपनी सहेलियों को दो!"

हमने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इस वक़्त हमको भूख नहीं।" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "झूठ न बोलो, आदमी का एक-एक झूठ लिखा जाता है।" (मुसनद अहमद-बिन-हम्बल)

इस रिवायत से मालूम होता है कि हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) की सहेली थीं।

हज़रत असमा (रज़ि०) और उनके सभी रिश्तेदार अल्लाह और अल्लाह के रसूल से बहुत मुहब्बत करते थे और इस्लाम की ख़ातिर वे अपनी जान और माल सब कुछ न्योछावर करने के लिए हर वक़्त तैयार रहते थे। सन् 2 हिजरी में जब बद्र की लड़ाई हुई तो सारे बनू-अब्दुल-अशहल के लोग इसमें दिल-जान से शरीक हुए। उनमें हज़रत असमा के कई क़रीबी रिश्तेदार भी थे। उहुद की लड़ाई में भी यही हाल था। इस लड़ाई में हज़रत असमा (रज़ि०) के चचा हज़रत ज़ियाद-बिन-सकन (रज़ि०) और चचेरे भाई हज़रत उमारा-बिन-ज़ियाद (रज़ि०) ने इस शान से अपनी जान नबी (सल्ल०) पर क़ुरबान की कि दूसरे सहाबा उनपर रश्क करते थे।

उहुद के मैदान में मुशरिकों ने नबी (सल्ल०) को क़त्ल करने का नापाक इरादा कर रखा था। अपने इस इरादे को पूरा करने के लिए वे

बार-बार नबी (सल्ल०) पर हमला करते थे। एक बार ऐसी ही मुश्किल हालत सामने आ गई तब नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि कौन है जो दुश्मनों का ख़ातिमा करे और अपनी जान अल्लाह की राह में बेच दे। फ़ौरन पाँच अंसारी जाँनिसार आगे बढ़े और बड़ी बहादुरी से लड़कर अपनी जानें नबी (सल्ल०) पर क़ुरबान कर दीं। इन जाँनिसारों में एक हज़रत ज़ियाद-बिन-सकन (रज़ि०) थे। ज़ियाद (रज़ि०) के बेटे हज़रत उमारा (रज़ि०) भी बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। उनके जिस्म पर तेरह ज़ख़्म लग चुके थे, लेकिन पीछे हटने का नाम न लेते थे। आख़िर चौदहवें ज़ख़्म के साथ ताक़त जवाब दे गई और गिर पड़े। लोगों ने समझा शहीद हो गए हैं। नबी (सल्ल०) को ख़बर दी गई तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उमारा की लाश को मेरे पास लाओ।" लोग उनकी तरफ़ दौड़े, देखा कि अभी साँस चल रही है। उठाकर नबी (सल्ल०) के सामने रख दिया। बोलने की ताक़त नहीं थी, लेकिन बुझती हुई आँखें दिल का हाल कह रही थीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! यह तो सिर्फ़ एक जान थी, अगर हज़ार जानें भी होतीं तो वे भी आप (सल्ल०) पर क़ुरबान कर देता।"

फिर उन्होंने अपना चेहरा नबी (सल्ल०) के क़दमों से लगा दिया और इसी हालत में इन्तिक़ाल किया।

यही वह ख़ानदान था जिसमें हज़रत असमा (रज़ि०) पली, बढ़ीं, और बुढ़ापे की उम्र को पहुँचीं।

हज़रत असमा (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बड़ी अक़ीदत और मुहब्बत थी। अकसर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत मे हाज़िर होतीं और इल्म हासिल करतीं। एक बार नबी (सल्ल०) ने उनके सामने दज्जाल की चर्चा की तो बड़ी प्रभावित हुईं और रोने लगीं। नबी (सल्ल०) उठकर बाहर तशरीफ़ ले गए। कुछ देर बाद जब आप (सल्ल०) वापस तशरीफ़ लाए तो हज़रत असमा (रज़ि०) अभी तक सिसकियाँ ले रही थीं। आप

(सल्ल०) ने फ़रमाया, "असमा! इतना क्यों रोती हो?" बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमसे तो इतनी भूख भी नहीं सहन होती कि कनीज़ इत्मीनान से आटा गूँधकर रोटी पका ले। दज्जाल के ज़माने में जो अकाल पड़ेगा, हम ईमान पर कैसे साबित-क़दम रहेंगे?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उस वक़्त अल्लाह के ज़िक्र की कसरत (बहुतायत) भूख से बचाएगी।"

फिर उन्हें तसल्ली दी कि रोने की ज़रूरत नहीं है, अगर मैं उस वक़्त तक ज़िन्दा रहा तो मुसलमानों की हिफ़ाज़त करूँगा। अगर दज्जाल मेरे बाद प्रकट हुआ तो हर मुसलमान की हिफ़ाज़त अल्लाह ख़ुद करेगा।

एक बार हज़रत असमा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ऊँटनी की नकेल थामे खड़ी थीं कि नबी (सल्ल०) पर वह्य नाज़िल हुई। हज़रत असमा (रज़ि०) बयान करती हैं कि ऊँटनी उस वक़्त बोझ तले दबी जाती थी, मैं डरने लगी कि कहीं उसकी टाँगे न टूट जाएँ।

एक बार हज़रत असमा (रज़ि०) कुछ दूसरी औरतों के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर थीं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "शायद ऐसा होता हो कि मर्द या औरत अपने आपसी ताल्लुक़ात की बातें दूसरे आदमियों को बताते हों?"

दूसरी औरतें तो ख़ामोश रहीं, हज़रत असमा (रज़ि०) ने कहा, "जी हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल! कुछ मर्द और औरतें ऐसा करती हैं।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। ऐसा आदमी उस शैतान जैसा है जो किसी शैतान औरत से सबके सामने सोहबत में लगा रहे।"

हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में यरमूक की ज़बरदस्त लड़ाई हुई तो जिहाद के शौक़ ने हज़रत असमा (रज़ि०) को घर न बैठने दिया। वे अपने ख़ानदानवालों के साथ इस लड़ाई में शरीक

हुईं और पूरी साबित-क़दमी से लड़ाई में हिस्सा लिया। एक मौक़े पर ईसाई मुसलमानों को धकेलते हुए औरतों के ख़ेमों तक आ पहुँचे। हज़रत असमा (रज़ि०) और दूसरी मुसलमान औरतें ख़ेमों की लकड़ियाँ उखाड़कर दुश्मनों पर टूट पड़ीं और उनको पीछे धकेल दिया। सीरत-निगारों ने लिखा है कि हज़रत असमा (रज़ि०) ने अकेली अपनी लकड़ी से नौ रूमियों को क़त्ल किया।

हज़रत असमा (रज़ि०) को मेहमानों की ख़िदमत में बड़ी ख़ुशी मिलती थी। एक बार मशहूर ताबिई "शहर-बिन-हौशब (रह०)" उनके घर आए। हज़रत असमा (रज़ि०) ने बड़ी मुहब्बत से खाना पेश किया। उन्होंने खाने से इनकार कर दिया। हज़रत असमा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी की एक घटना सुनाकर फ़रमाया, "अब तो तुम्हें इनकार नहीं?"

उन्होंने कहा, "अम्मा, अब ऐसी ग़लती नहीं करूँगा।"

हज़रत असमा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 15 हिजरी में होनेवाली यरमूक की लड़ाई के कई साल बाद हुआ। उनसे कुछ हदीसें भी रिवायत की गई हैं। उनकी औलाद का ज़िक्र किताबों में नहीं मिलता।

हाफ़िज इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने उनके बारे में लिखा है —

"वे अक़्लमन्द भी थीं और दीन की जानकारी भी रखती थीं।"

समाप्त